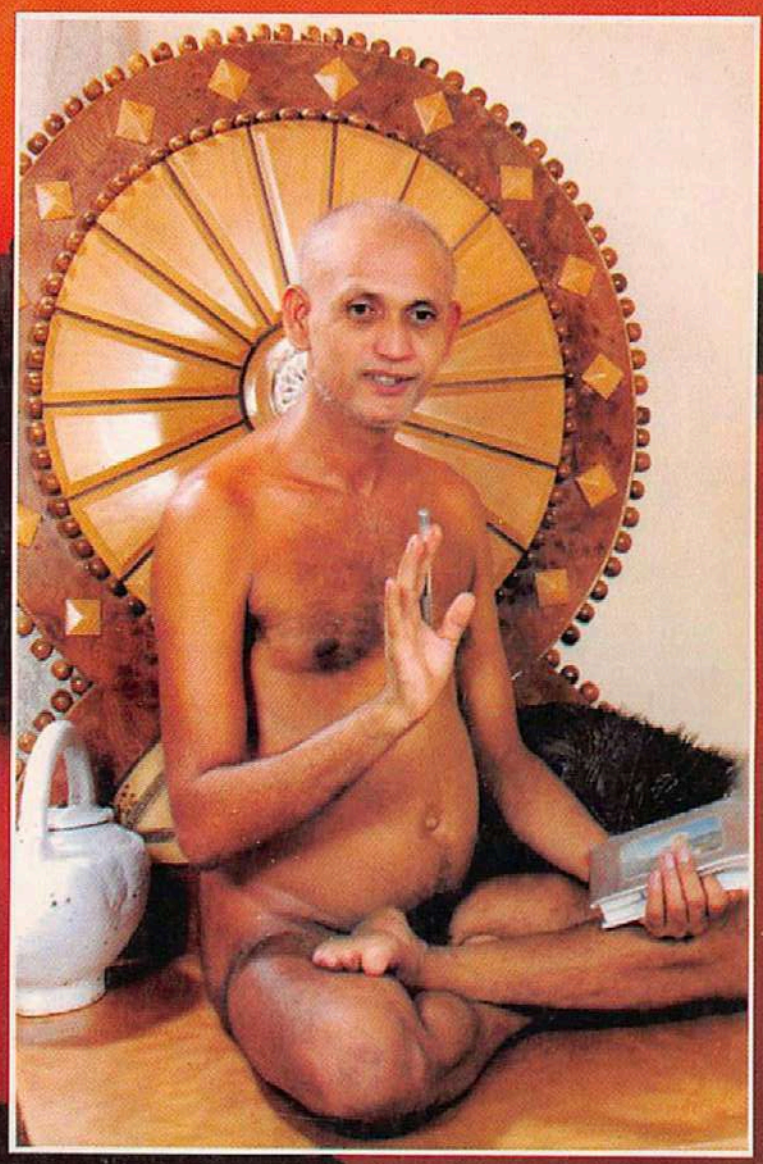

प.पू. उपाध्याय श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज

मुद्रक: चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा–3 फोन: 2360195

सम्यक्त्व कौमुदी

सम्पादकः

उपाध्याय मुनि निर्णय सागर

संस्करण : प्रथम - 1500 प्रतियाँ, सन् 2005
@ सर्वाधिकार सुरक्षित : प्रकाशकाधीन

ग्रंथ : सम्यक्त्व कौमुदी
रचयिता : अज्ञात
पावन आशीष : प. पू. सिद्धांत चक्रवर्ती, राष्ट्रसंत आचार्य श्री १०८ विद्यानन्द जी महाराज
सम्पादक : उपाध्याय मुनि निर्णय सागर
सहयोगी : ऐलक श्री १०५ विमुक्त सागर जी
क्षुल्लक श्री १०५ विशंक सागर जी
क्षुल्लक श्री १०५ नित्यानंद जी
प्रकाशक : निर्ग्रंथ ग्रन्थमाला
e-mail : nirgranthmala@rediffmail.com
ग्रंथाक : 104
मूल्य : स्वाध्याय (सहयोग राशि 30/-)
ग्रंथ प्राप्ति स्थान : १. चन्द्रा कॉपी हाउस, १४/१०, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
२. निर्ग्रंथ ग्रंथमाला, श्री दि. जैन ऋषभदेव मंदिर,
ऋषभपुरी, टूण्डला चौराहा, टूण्डला-जिला फिरोजाबाद (उ.प्र.)
मुद्रक : अनिल कुमार जैन
चन्द्रा कॉपी हाउस, हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.) फोन: २३६०१९५,
e-mail : contact@cchgroup.net

SAMYAKTVA KAUMUDI

Edited by :

Upadhyaya Muni Nirnaya Sagar

Published by

Nirgranth Granthmala

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्तहै, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्तहोता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुड़ी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करें तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं, निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं–

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥17 ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी पात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्तिप्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढंग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ़ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते हैं अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं –

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाराधना)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अतः कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका के महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एवं कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया है। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक है। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्तिकी भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं –

प्रथमानुयोग मर्याख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र. श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय – सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एवं समाधि– निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभूति भी कहते हैं इसका प्रारंभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्यक्षानुभूति कदापि संभव नहीं है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना है ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक है अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुणस्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्तिनहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या एकान्तवाद की पंक में लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा करते ही हैं वे अपने जीवन के साथ खिलवाड़ तो करते हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्तउन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्तिनित्य विनयपूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बड़े-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अतः प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही हैं। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

''अलमति विस्तरेण''

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (फिरोजाबाद)
03.12.2000

ॐ ह्रीं नमः

आद्य वक्तव्य

सम्यक्त्व (सम्यक् दर्शन) आत्मा के समस्त गुणों में श्रेष्ठ व प्रधान गुण है, श्रद्धा की समीचीनता होने पर चेतना के सभी गुण समीचीन होते चले जाते हैं। ज्ञान और चारित्र भी मोक्ष मार्ग के अभिन्न अंग हैं, फिर भी बिना सम्यक्त्व के न तो ज्ञान ही सम्यक् हो सकता है और न चारित्र ही। सम्यक् दर्शन ज्ञान और चारित्र के मध्य खेवटिया के समान कर्णधार है। तीनों लोकों व तीनों कालों में संसार प्राणी के लिए सम्यक्त्व के समान न तो कोई हितकारी है और न मिथ्यात्व के समान कोई अहितकारी है।

सम्यक् दर्शन से युक्त एक नारकी या पशु भी मोक्ष मार्गी है, किन्तु सम्यक् दर्शन से रहित देव मनुष्य भी संसार मार्गी है। सम्यक् श्रद्धा नियम से संसार का विच्छेद कराने वाली है, मिथ्या श्रद्धा भव भ्रमण कराने वाली है। सम्यक् दर्शन से युक्त जीव नरकायु, तिर्यंचायु का बंध नहीं करता तथा मनुष्य-मनुष्य आयु का भी बंध नहीं करता। सम्यक् दृष्टि जीव सम्यक्त्व के साथ नपुंसक, स्त्री पर्याय में नहीं जाता, एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय, अल्पायुस्यक, दरिद्र, विकलांग, निंद्य व नीच कुल में जन्म नहीं लेता।

परमार्थ भूत आप्त, आगम, और मुनिराजों का शंकादि दोषों से रहित निशंकादितादि आठ अंगों से रहित जो श्रद्धान है, वह सम्यक् दर्शन है अथवा अरिहंत से बढ़कर देव नहीं है, दया से बढ़कर धर्म नहीं है, और निर्ग्रंथता से बढ़कर कोई तप नहीं है, ऐसा श्रद्धान भी सम्यक्त्व का लक्षण है।

अथवा

महान् उत्तम अरिहन्तों भगवन्तों के द्वारा कहे गये जीवादि पदार्थों का उसी प्रकार भक्ति पूर्वक दृढ़ श्रद्धान होना सम्यक् दर्शन है।

अथवा

अपने शुद्ध चैतन्य स्वरूप में जो रुचि है, निश्चय से ज्ञानी पुरुषों के द्वारा सम्यक्दर्शन माना गया है यह सम्यग्दर्शन माना गया है।

जीवादि सकल द्रव्यों का श्रद्धान सम्यक्त्व है अथवा तत्वों के स्वभाव का श्रद्धान करना भी सम्यग्दर्शन है।

वह सम्यग्दर्शन निकट/आसन्न भव्य जीव को प्रतिपक्षी कर्मों की हानि होने पर, संज्ञी पंचेन्द्रिय को शुभ परिणामों से मुक्त पर्याप्तक होने पर जाग्रत अवस्था में मिथ्यात्व का उपशम होने पर सद्गुरुओं के निमित से होता है। उस सम्यग्दर्शन के उत्पति की अपेक्षा निसर्गज व अधिगमज नामक दो भेद हैं, अथवा वह भेद-अभेद सराग-वीतराग, व्यवहार व निश्चय के भेद से दो प्रकार हैं।

अथवा औपशमिक, क्षासोपशमिक व क्षयिक के भेद के तीन प्रकार हैं तथा मार्गणा की अपेक्षा छह भेद भी हैं। आज्ञा सम्यक्वादि की अपेक्षा से दश भेद हैं। जिस भव्य जीव ने एक अन्तमुर्हर्त्त के लिए भी सम्यक्त्व प्राप्त किया है, वह भी अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन काल के अन्तर्गत ही नियम से मोक्ष को प्राप्त करेगा।

क्षायिक सम्यग्दर्शन वाला जीव उसी भव से या नरक या देव आयु को पूर्व में बाँध चुका है तो तृतीय भव से और मनुष्य व तिर्यंच आयु का बन्धक है तो नियम से चतुर्थ भव में मोक्ष प्राप्त करेगा।

वह क्षायिक सम्यक्त्व केवली व श्रुत केवली के मूल में ही संभव है। सम्यग्दर्शन का आठ अंग सहित आठ या चार गुण रूप सहित शंकादि पच्चीस दोषों व पाँच अतीचारों से रहित पालन करना चाहिए। यही श्रावक का सम्यक्त्वाचरण चारित्र है। अथवा सप्तव्यसन, अन्याय, अत्याचार, अनाचार का त्यागी सम्यक्त्वाचरण का धारक होता है।

प्रस्तुत ग्रंथ "सम्यक्त्व कौमुदी" में महा मनीषी आचार्य भगवन् ने सम्यक्त्वोत्पत्ति की आठ कथाओं का जिस रोचक शैली में वर्णन किया है वैसा वर्णन अन्यत्र उपलब्ध नहीं है। प्रस्तुत ग्रंथ के रचयिता कौन मनीषी आचार्य थे। उनके बारे में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं होती। यहाँ तक उन्होंने अपना नाम भी नहीं दिया इससे सिद्ध होता है कि वे आचार्य अमृत चंद्र आचार्यों की तरह विरक्त, अत्यंत निस्पृह आचार्य रहे होंगे। उन्होंने जिस रोचक, सरल, सहज, सुबोधक कथा पद्धति का सहारा लेकर विषय का प्रतिपादन किया है। वह अनुपमेय है। प्रस्तुत ग्रंथ में जीवनोपयोगी, धर्म व लोक व्यवहार से युक्त लगभग-पाँच सौ, छह सौ नैतिक छंद भी दिये। इससे सिद्ध होता है वे न्याय-नीति, राजनीति,

चा० च० प. पू. आचार्य श्री १०८ शांतिसागर जी महाराज

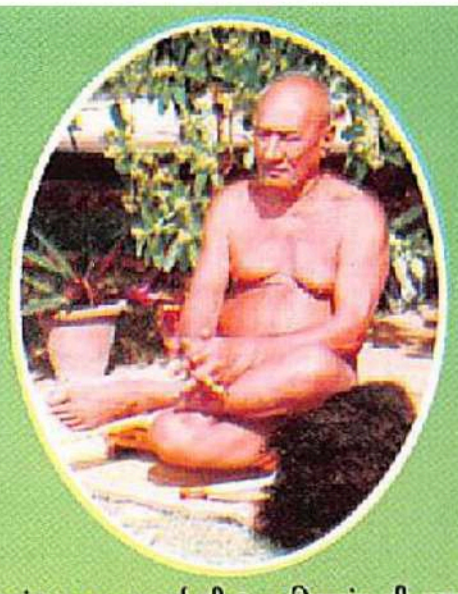

राष्ट्रसंत प. पू. आचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी महाराज

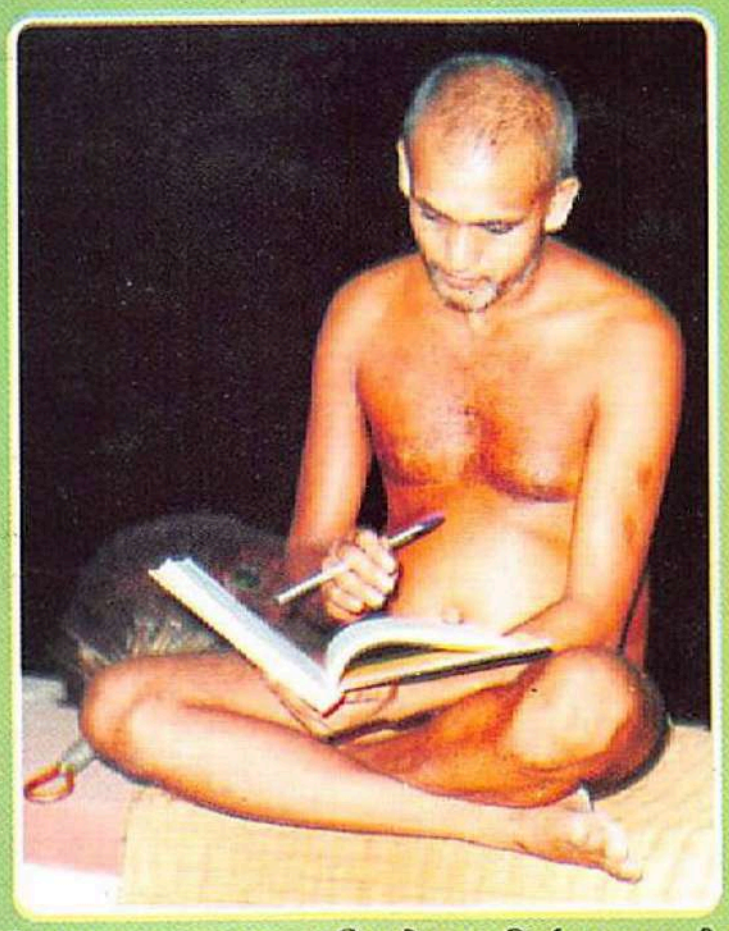

स्वाध्यायी संत प. पू. उपाध्याय मुनि श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज

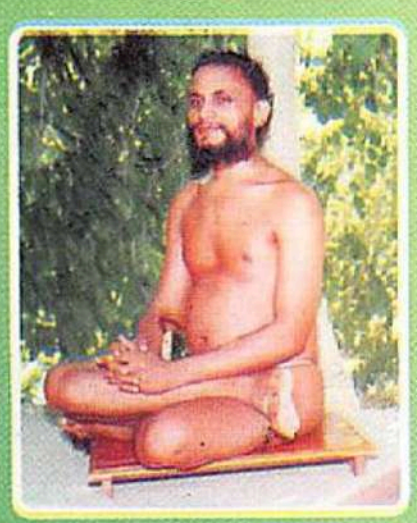

ऐलक श्री १०५ विमुक्त सागर जी महाराज

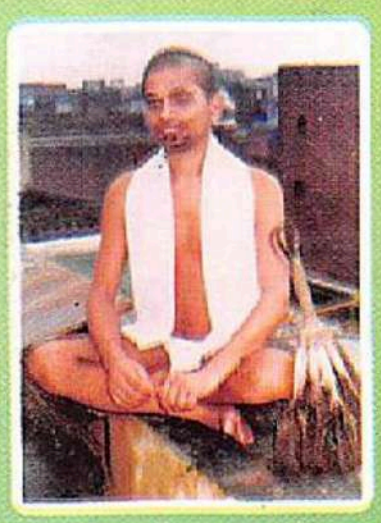

क्षुल्लक श्री १०५ विशंक सागर जी महाराज

क्षुल्लक श्री १०५ नित्यानंद जी महाराज

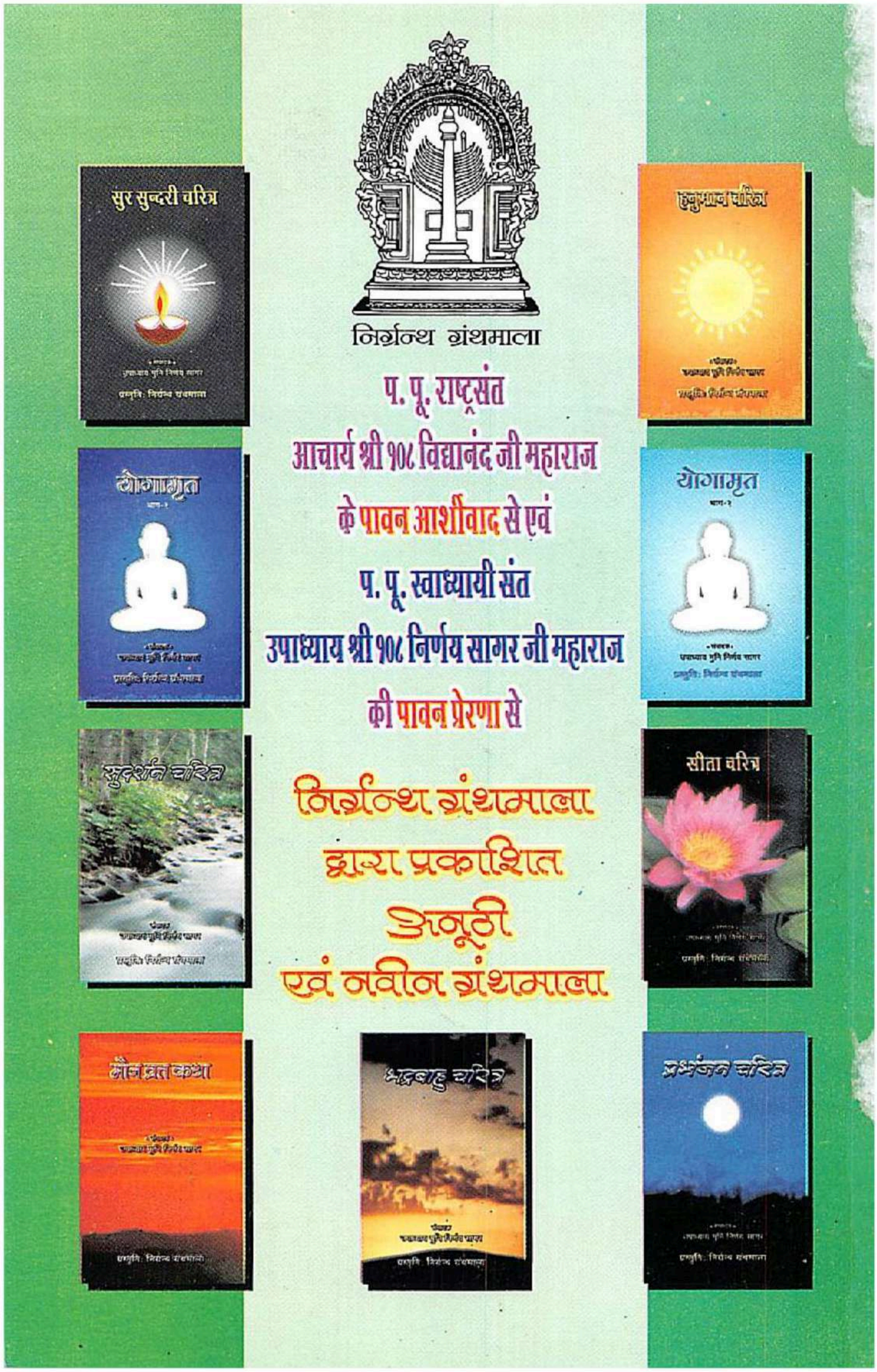

प. पू. राष्ट्रसंत
आचार्य श्री १०८ विद्यानंद जी महाराज
के पावन आशीर्वाद से एवं
प. पू. स्वाध्यायी संत
उपाध्याय श्री १०८ निर्णय सागर जी महाराज
की पावन प्रेरणा से

निर्ग्रन्थ ग्रंथमाला
द्वारा प्रकाशित
अनूठी
एवं नवीन ग्रंथमाला

धर्मनीति व अध्यात्म विद्या के परम प्रज्ञा पुरुष रहे। संसार में किसी का नाम शाश्वत नहीं रहा, आत्मा बिना नाम की चीज है। तथा कर्तव्य से मुक्त होने हेतु अपना नाम प्रकट न करना, आत्म रसिक द्वारा ही संभव है।

प्रस्तुत ग्रंथ "सम्यक्त्व कौमुदी" का सार इस प्रकार है–

जम्बूद्वीपस्थ भरत क्षेत्र के आर्यखण्ड की उत्तर मथुरा नगरी में राजापद्मोदय व रानी यशोमती का पुत्र उदितोदय राज्य करता था, इसका संभिन्नमति और सुप्रभा का पुत्र सुबुद्धि नाम का धारक इस राजा का सर्वहित साधने वाला प्रधान मंत्री था, इसी नगर में जिनदत्त श्रेष्ठी व जिनमति का पुत्र अर्हद्दास धर्मध्यान पूर्वक रहता था। इसी नगर में रूपखुर चोर व रूपखुरा का पुत्र स्वर्णखुर चोर भी रहता था। राजा उदितोदय प्रतिवर्ष कार्तिक सुदी १५ को "कौमुदी महोत्सव" का आयोजन करता है। इस आयोजन में नगर की समस्त स्त्रियाँ रात्रि के समय क्रीड़ाऐं करने जातीं किन्तु सभी पुरुष नगर में ही रहते थे।

अर्हद्दास श्रेष्ठी ने अष्टान्हिका पर्व में आठ उपवास किये अतः वह कौमुदी महोत्सव न जाने की अर्थात् स्त्रियों को न भेजने की स्वीकृति ले चुका था, किन्तु उसे धर्म ध्यान पूर्वक रात्रि जागरण करना था। राजा उदितोदय रानी के वियोग में व्याकुल हो वन जाने का आग्रह करता है। तब सुबुद्धि मंत्री उसे हस्तिनापुर के राजा सुयोधन का वृतांत सुनाता है:- जिस प्रकार सुयोधन राजा प्रजा व यमदण्ड कोतवाल का विरोधी बन, जनता द्वारा पदच्युत कर दिया गया। यमदण्ड कोतवाल से जनता संतुष्ट थी, राजा को यह सहन नहीं हुआ तब राजा सुयोधन, मंत्री पुरुषोत्तम तथा पुरोहित तीनों ही खजाने से चोरी करने जाते हैं किन्तु वहाँ उनके खड़ाऊ, मुद्रिका व जनेऊ, जल्दीबाजी में छूट जाते हैं, जिन्हें यमदण्ड कोतवाल ने ग्रहण कर लिया। चोर कितनी भी सावधानी रखे किन्तु फिर भी प्रमाण के लिए कोई न कोई चिन्ह अवश्य ही छोड़ जाता है। यमदण्ड कोतवाल को सभा मध्य कहा कि इसने चोर का पता नहीं लगाया तो तुम्हें प्राण दण्ड दिया जाएगा, सात दिन का समय दिया गया। प्रथम दिन यमदण्ड ने वृद्ध हंस जिसका आशय था शरण दाता ही प्राण लेना चाहता है। दूसरे मिट्टी की खदान में कुंभकार की मृत्यु सम्बन्धी कथा कही। जिसका आशय था जिससे जीवन चल रहा था, उससे ही मृत्यु का भय हो गया है। तसरे इन्द्रदत्त की बलि की कथा कही जिसका भाव ये था की जब माता-पिता ही बेच रहे हैं और राजा ही खाना चाहता है तो शरण कहाँ मिल

सकती है। चतुर्थ दिन मृगों की कथा कही की जब राजा ही मारने को तैयार है, रक्षक ही भक्षक बन रहा है तो बेचारे मृग कहा जाएँ। जंगल में आग लगी है, जल में विष मिला है, रस्सियों से बाढ़ लगी है, राजा तीर ताने दौड़ रहा है तब बचाने वाला कौन हो सकता है, ऐसे में मूक रहने के सिवाय अब चारा भी क्या है, पाँचवे दिन राजा वसुंधर व मंत्री भारत भूषक की कथा कही, मंत्री ने राजा की कविताओं की प्रशंसा नहीं की अतः राजा ने मंत्री को नदी में फिकवा दिया अर्थात् रक्षक ही भक्षक बन रहा है, छठवें दिन हस्तिनापुर के राजा सुभद्र व बन्दरों की कथा कही जिसका आरोप भी उसी प्रकार का है। सातवें दिन यमपाल कोतवाल से जब चोर के विषय में राजा ने पूछा तब वह मौन रहा, महाजनों ने पूछा तब यमपाल के चिन्ह (खड़ाऊँ, मुद्रिका, जनेऊ) लाकर सामने रख दिये, जिससे सभी जनता ने समझ लिया कि राजा, मंत्री पुरोहित ही चोर हैं। बेचारे न्यायप्रिय, सत्यवादी, यथार्थ धर्मात्मा यमपाल को मिथ्या, जाल में फँसा कर मारना चाहते हैं। राजा का षड्यंत्र विफल हुआ जनता ने राजा, मंत्री व पुरोहित को पदच्युत कर दण्डित किया व देश से बाहर निकाल दिया। "इस प्रकार सुबुद्धिमंत्री ने राजा उदितोदय को समझाया" जिसे राजा ने स्वीकार कर लिया और नगर में भ्रमण करने लगे। मार्ग में अंजन गुटिका सिद्ध स्वर्णखुर चोर आगे-आगे जाते हुये दिखा। वह चोर अर्हद्दास अपनी आठ पत्नियों के साथ जिनभक्ति, सूरि, वंदना व धर्म कथाओं के कहने में संलग्न था। श्रेष्ठी अहर्द्दास ने किस प्रकार सम्यक्त्व प्राप्त किया यह कथा कही इसके साथ श्रेष्ठी की सात पत्नियों ने :– १. मित्र श्री २. चन्दन श्री ३. विष्णु श्री ४. नाग श्री ५. पद्मलता ६. कनक लता ७. विद्युतलता ने भी अपने सम्यक्त्व प्राप्ति की कथा कही जिसे कुन्दलता ने नकार दिया। प्रातः राजा मंत्री आदि कुंदलता को दण्ड देने के उद्देश्य से वहाँ आये। और पूछा कि वह इन सत्य कथाओं को स्वीकार क्यों नहीं करती, तब कुन्दलता ने कहा कि यदि इन्हें धर्म पर श्रद्धा है तो ये अभी तक ग्रहस्थावस्था में क्यों पड़े हैं, दीक्षा क्यों नहीं ली, जबकि इन्होंने धर्म का फल प्रत्यक्ष में देख ही लिया है। मैंने धर्म का फल आज ही सुना है, और मैं अब दीक्षा लेने के लिए जाती हूँ, सभी लोग उसे समझाते हैं किन्तु वह नहीं मानती तब अर्हद्दास श्रेष्ठ उसकी अन्य सातों पत्नियाँ, राजा, मंत्री व स्वर्णखुर चोर व इनकी पत्नियाँ भी जिन दीक्षा अंगीकार करते हैं, सहस्रों महानुभाव श्रावक व श्राविका के व्रत स्वीकार करते हैं। ये ग्रंथ अत्यन्त रोचक है। एक बार पढ़कर पुनः पुनः पढ़ने

का मन होता है। इस ग्रंथ का स्वाध्याय प्रारंभिक स्वाध्याय प्रेमी के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है किन्तु दीर्घकालीन स्वाध्यायी के लिए भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

प्रस्तुत ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी "श्री निर्ग्रंथ ग्रंथमाला समिति" के समस्त महानुभावों को व अपने द्रव्य का सदुपयोग करने वाले सुधी श्रावक सपरिवार को एवं प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोगी महानुभावों को धर्म वृद्धि शुभाशीष। तथा अनन्य सहयोगी संघस्थ ऐलक जी, छुल्लक व संघस्थ सभी त्यागी व्रतियों को सुसमाधिरस्तु शुभाशीष।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन–संशोधन में मुझ अल्पज्ञ द्वारा जो त्रुटि रह गईं हों तो अभेद रत्नत्रयधारी सभी विज्ञजन मुझे क्षमा करें, व सुझाव देने का अनुग्रह करें। सुधी पाठक महोदय, अध्येता व स्वाध्याय प्रेमी महानुभाव इस ग्रंथराज का त्रैयोग से विनय पूर्वक आद्योपांत वाचन और पाठन करें। अर्थात् सद्बोध को प्राप्त कर संयम की ओर आत्म कल्याण के मार्ग पर अग्रसर हों, ऐसी मेरी विनम्र भावना है–इसी मंगल भावना के साथ।

अलमति विस्तरेण।

ॐ ह्रीं नमः

श्रुतपंचमी पर्वावसरे–सर्वार्थसिद्धियोगे
श्री शुभ मिती जयेष्ठ सुदी ५ रविवार
वी. नि. २५३० वि. सं. २०६१
शालीमार बाग, नई दिल्ली

संयमानुरक्तः जिनचरणानुचरः
कश्चिदल्पज्ञ, निर्ग्रंथ पाठकः
सोमवार २५.०५.२००४
श्री दिगम्बर जैन मंदिर
शालीमार बाग – नई दिल्ली

❑❑

निर्ग्रन्थ ग्रन्थमाला

प. पू. उपाध्याय मुनि श्री निर्णय सागर जी
द्वारा
रचित एवं सम्पादित ग्रंथावली

* सुकुमाल चरित्र
* चारुदत्त चरित्र
* गौतम स्वामी चरित्र
* महीपाल चरित्र
* जैन व्रत कथा संग्रह
* धन्य कुमार चरित्र
* सुलोचना चरित्र
* सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
* जिन दत्त चरित्र
* कुरल-काव्य
* पुराण सार संग्रह - 1,2
* चेलना चरित्र
* रयणसार
* आहार दान
* जिन श्रमण भारती
* धर्म संस्कार भाग-1
* सदार्चन सुमन
* तनाव से मुक्ति
* धम्म रसायणं
* आराधना कथाकोश-1,2,3
* तत्वार्थ सार
* योगामृत-1,2
* सार समुच्चय
* महापुराण-1,2
* चित्रसेन पद्मावती चरित्र
* नंगानंग कुमार चरित्र
* श्री राम चरित्र भाग-1,2
* अमरसेण चरिउ
* नागकुमार चरित्र
* सर्वोदयी नैतिक धर्म
* पुण्यास्रव कथाकोष भाग-1,2
* करकंड चरित्र
* जम्बूस्वामी चरित्र
* शांतिनाथ पुराण-1,2
* धर्मामृत-1,2
* वीर वर्धमान चरित्र-1,2
* सीता चरित्र
* प्रभंजन चरित्र
* सुरसुन्दरी चरित्र
* भद्रबाहु चरित्र
* हनुमान चरित्र
* मौनव्रत कथा
* सप्त व्यसन चरित्र
* योगसार प्राभृत-1,2
* सुदर्शन चरित्र
* आध्यात्म तरंगिणी
* निज अवलोकन
* सिंदूर प्रकरण
* कर्म प्रकृति
* आराधना सार

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढ़ायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य पर छपवाइये। ट्रस्ट –न्यास–फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

प्रकाशक
सम्यक्त्व कौमुदी

ॐ

सम्यक्त्व कौमुदी

जगत् के स्वामी श्री वर्द्धमान जिनेन्द्र को नमस्कार कर मैं मनुष्यों के सम्यक्त्व गुण की प्राप्ति के लिए सम्यक्त्वकौमुदी (नामक ग्रंथ को) कहूँगा ॥१॥ मैं श्रुत के सागर गौतमस्वामी नामक गणधर की तथा सर्वज्ञ भगवान् के मुख से प्रकट हुई उस प्रसिद्ध जिनवाणी की स्तुति करता हूँ॥२॥ इसके पश्चात् मैं शास्त्ररूपी समुद्र के पारगामी उन निर्ग्रन्थ गुरुओं की मन-वचन-काय की शुद्धि के द्वारा पूजा करता हूँ जिनके प्रसार से हृदय में स्थित समस्त जड़ता चली जाती है—नष्ट हो जाती है॥३॥ जिन्होंने समस्त पदार्थों को जान लिया है तथा जो समस्त ऋद्धियों से विभूषित हैं ऐसे श्रीमान् वृषभसेन आदि को लेकर गौतम स्वामी पर्यन्त समस्त गणधरों को नमस्कार करता हूँ॥४॥

अथानन्तर जम्बूद्वीप संबंधी भरत क्षेत्र के मगध देश में राजगृह नामक वह नगर है जहाँ निरन्तर उत्सव होते रहते हैं, उत्कृष्ट जिन मन्दिर विद्यमान हैं और जहाँ जैन धर्म के आचरण तथा उत्सवों से सहित श्रावक रहते हैं। जो हरे भरे सघन वृक्षों के समूह से सुशोभित हैं तथा धरणेन्द्र की नगरी भोगावती के समान जान पड़ता है। उस राजगृह नगर में यदि क्षणभङ्ग-क्षण क्षण में पदार्थ का नाश था, तो बौद्धों में ही था क्योंकि 'सर्वं' क्षणिकं सत्त्वात्' यह सिद्धान्त बौद्धों का ही था वहाँ के मनुष्यों में क्षणभङ्ग अर्थात् उत्सवों का विनाश नहीं था। भ्रान्ति-गोलाकार भ्रमण यदि था तो प्रदक्षिणा परिक्रमा में ही था वहाँ के मनुष्यों को किसीप्रकार की भ्रान्ति-सन्देह नहीं था और गुप्ति-मन-वचन-काय का निरोध मोक्षाभिलाषी जीवों में ही था। वहाँ के मनुष्यों में गुप्ति-धनादि को छिपाकर रखने का भाव नहीं था॥५॥ वहाँ पर कर ग्रह-स्त्री का पाणिग्रहण विवाहों में ही होता था अन्य मनुष्यों में करग्रह-टेक्स का ग्रहण नहीं होता था अर्थात् राजकीय व्यवस्था के लिए किसी से टेक्स नहीं लिया जाता था। द्विजपात-दाँतों का गिरना वहाँ वृद्धावस्था में ही होता था अन्य मनुष्यों में द्विजपात-ब्राह्मणादि त्रिवर्णों में दुराचार आदि के कारण किसी प्रकार का पतन नहीं होता था, सब सदाचार से रहते थे। जहाँ शून्यगृहों का दर्शन द्यूत क्रीड़ा-जुआ के

खेल में ही होता था वहाँ शून्य-उजाड़गृहों का दर्शन नहीं होता था अर्थात् सब घर, गृहस्वामियों से परिपूर्ण रहते थे॥६॥ जिस राजगृह नगर में विपदाक्रान्त-पक्षियों के पैरों अथवा उनके स्थान स्वरूप घोंसलों से आक्रान्त वृक्ष ही थे वहाँ के मनुष्य विपद आक्रान्त-विपत्ति से आक्रान्त नहीं थे। सरोग-सरोवरों में स्थित कमलाकर-कमल वन ही थे वहाँ के मनुष्य सरोग-रोग से सहित नहीं थे और सदण्ड-अण्डा के आकार उत्तम कलशों से युक्त देवालय ही थे अर्थात् देवालय पर ही उत्तम कलश रखे जाते थे वहाँ के मनुष्य सदण्ड-दण्ड से सहित नहीं थे अर्थात् वहाँ के मनुष्य ऐसा कोई अपराध नहीं करते थे जिससे उन्हें दंड भोगना पड़ता हो॥७॥ उस राजगृह नगर में श्रेणिक नाम का वह राजा रहता था जिसका सिंहासन समस्त राजाओं के समूह से सुशोभित रहता था अर्थात् जिसका सिंहासन अन्य राजाओं के आसनों से सदा घिरा रहता था, जो समस्त कलाओं में अत्यन्त निपुण था, सब प्रकार की राजनीति से सहित था, उत्तम राजनीति रूपी कुमुदिनी को विकसित करने के लिये जो चंद्रमा स्वरूप था, श्री सर्वज्ञ देव के द्वारा कथित धर्म में जिसका चित्त नियम से अनुरक्त रहता था, जिसने काम, क्रोध आदि अन्तरङ्ग शत्रुओं के समूह को अच्छी तरह जीत लिया था। श्री तीर्थंकर भगवान के चरणों में प्रणाम करने के लिये जो सदा उद्यत रहता था और क्षायिक सम्यग्दर्शन से जिसका चित्त अनुरक्त रहता था।

उस राजा श्रेणिक की चेलना नाम की वह पट्टरानी थी जिसका शरीर चातुर्य, औदार्य और सौभाग्य आदि गुण रूपी रत्नों से अलंकृत था, श्री वीतराग भगवान के द्वारा कथित समीचीन धर्माचरण रूपी अमृत से जिसका शरीर सुशोभित था जो समस्त गुणों से संपन्न थी और अत्यन्त रूपवती थी। वह राजा श्रेणिक इन्द्र के समान सुशोभित होता था और वह चेलना रानी इन्द्राणी के समान सुशोभित होती थी।

उस राजा श्रेणिक का जैनागम के रहस्य में निपुण, अंतरंग शत्रुओं को नष्ट करने वाला, सम्यग्दर्शन, मूलगुण और अणुव्रतों को धारण करने वाला, पर्व के दिनों में प्रोषधोपवास करने वाला, बहत्तर कलाओं का भण्डार, चार प्रकार की बुद्धिरूपी वैभव को प्रधानता से धारण करने वाला और वृहस्पति के समान अन्यन्त श्रेष्ठ अभयकुमार नाम का प्रधान मन्त्री था जो राज्य के भार को धारण करता था।

एक समय, जिनके चरण कमल समस्त सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों के द्वारा सेवित थे, जिन्हें सबको आश्चर्य उत्पन्न करने वाले समस्त मनोहर अतिशय प्राप्त थे तथा जो अन्तिम तीर्थंकर थे ऐसे श्री वर्द्धमान स्वामी वैभारगिरि को अलंकृत कर रहे थे। एक दिन ज्योंही कुछ कदम रखकर वनपाल वन में घूमने लगा त्योंही उसने जन्म से ही परस्पर वैर रखने वाले अश्व और भैंसा, चूहा और बिलाव तथा सांप

और नेवला आदि जीवों का एक स्थान पर सम्मेलन देखा। उसे देख, आश्चर्ययुक्त होते हुए उसने विचार किया कि अहो ! यह क्या है ? इन सब जीवों का इस प्रकार एकत्रित होना शुभ है या अशुभ ? ऐसी चिन्ता से जिसका चित्त व्याप्त हो रहा था, ऐसे घूमते हुए वनपाल ने विपुलाचल पर्वत के ऊपर समस्त इन्द्रों से युक्त तथा जय-जय आदि के शब्दों से दिशाओं के अन्तराल को पूर्ण करने वाला, अन्तिम तीर्थंकर श्री वर्द्धमान स्वामी का समवसरण देखा। वैभारगिरि की कटनियों पर भ्रमण करने वाले वनपाल ने श्री महावीर स्वामी का वह समवशरण देखाजिसकी दिशाओं के मध्यभाग कानों के लिये सुखदायक और मन को आनन्दित करने वाले परम सुन्दर देव दुन्दुभियों के शब्दों से मिली हुई जय-जय ध्वनि से परिपूर्ण थे, जो उत्तम छत्र त्रय, चामर तथा ध्वजा आदि से सुशोभित था जिसमें रत्न, सुवर्ण और चाँदी के कोट थे, जहाँ आर्य देश तथा उत्तम कुल में जन्म समस्त इन्द्रियों की समर्थता, और सम्पूर्ण आयु से युक्त मनुष्यों का समूह था, जहाँ खिले हुए स्वर्ग सम्बन्धी फूलों के गुच्छे की सुगन्धि के समूह में सतृष्ण लीन भ्रमरों की मधुर गुंजार से युक्त अशोक वृक्षों का समूह था और मैं "पहले पहुँचूँ, मैं पहले पहुँचूँ' इस प्रकार की होड़ लगाकर चार निकाय के देवों के विमान आ रहे थे। जैसा कि कहा है-

मानस्तम्भ, सरोवर, अत्यन्त निर्मल जल से भरी हुए परिखा, पुष्पवाटी, कोट, दोनों ओर नाट्य शालाएँ, उपवन, वेदिका, बीच में अनेक ध्वजा आदि, कोट, कल्पवृक्षों का वन, स्तूप, उत्तम भवनों की पंक्ति, स्फटिकमणि का कोट, उसके भीतर मनुष्य और देवों की सभाएँ और पीठिका के अग्रभाग पर विराजमान श्री जिनेन्द्र देव.....ये सब समवशरण के परिचायक हैं॥८॥

समवसरण को देखकर हर्षित होता हुआ वनपाल मन में विचार करता है कि अहो ! मैंने परस्पर विरोध रखने वाले जीवों का जो एक स्थान पर मेला देखा है वह सब समस्त ऐश्वर्य को धारण करने वाले इन्हीं भगवान् महानुभाव का माहात्म्य है।

जिस प्रकार पथिक जन, छाया कि लिए सघन वृक्षों का आश्रय लेते हैं उसी प्रकार साँपों के फणों पर बैठे हुए मेंढक छाया के लिए यहाँ आश्रय ले रहे हैं॥९॥

समताभाव में लीन, कलुषता से रहित, क्षीणमोह योगी-मुनिराज का आश्रय पाकर हरिणी पुत्र समझ कर सिंह (शावक) के बालक का, गाय व्याघ्र के शिशु का और बिल्ली हंस के बच्चे का स्पर्श कर रही है, मयूरी प्रेम से विह्वल होकर सर्प का आलिङ्गन करती है तथा जिनका गर्व नष्ट हो गया है ऐसे अन्य जीव भी जन्मजात वैर को छोड़ रहे हैं॥१०॥

ऐसा जानकर असमय में उत्पन्न होने वाले कुछ फलों को लेकर वह वनपाल, सभामण्डप में स्थित महामण्डलेश्वर राजा श्रेणिक के हाथ में देता हुआ बोला-हे देव ! आपके पुण्योदय से विपुलाचल पर्वत के ऊपर श्रीवर्द्धमान स्वामी का समवशरण आया है।

वनपाल के उक्त वचन सुन खिले हुए मुख और नेत्रों से युक्त राजा मन में ऐसा हर्षित हुआ जैसा कि दरिद्र मनुष्य खजाने को पाकर हर्षित होता है।

राजा ने शीघ्र ही सिंहासन से उठकर तथा जिस दिशा में वर्द्धमान स्वामी विद्यमान थे उस दिशा में सात कदम जाकर उन्हें नमस्कार किया॥११॥

यही भाव गद्य में दिखलाते हैं कि वनपाल के ये वचन सुनकर राजा ने आसन से उठकर तथा उस दिशा में सात पग जाकर भगवान् वर्द्धमान स्वामी को साष्टाङ्ग नमस्कार किया। तदनन्तर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए राजा श्रेणिक ने अपने शरीर पर स्थित समस्त वस्त्राभूषण अत्यधिक प्रेम से वनपाल को दे दिए तत्पश्चात् सबके सामने वनपाल ने कहा कि यह सच है। जैसा कि कहा है-

राजा, देवता, गुरु और विशेष रूप से निमित्त ज्ञानी का दर्शन खाली हाथ नहीं करना चाहिए क्योंकि फल की प्राप्ति फल से ही होती है॥१२॥

तदनन्तर मगध देश के स्वामी राजा श्रेणिक ने आनन्द भेरी दिलवायी और स्वयं आठ प्रकार की पूजा सामग्री से युक्त हो कुटुम्बीजन तथा नगरवासी जनों के साथ बड़े भारी उत्सव से समवशरण की ओर गमन किया। राजा ने हाथ जोड़कर तथा पूजा कर स्तुति की। देवाधिदेव श्री महावीर स्वामी को प्रणाम कर राजा ने इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया।हे देव ! आज आपके चरण कमलों का दर्शन करने से मेरे दोनों नेत्र सफल हुए हैं और हे तीन लोक के तिलक ! आज मुझे यह संसार सागर चुल्लू प्रमाण जान पड़ता है॥१३॥

इस प्रकार के अनेक स्तोत्रों से श्रीवर्द्धमान जिनेन्द्र तथा मुनियों के नायक श्री गौतम स्वामी की स्तुति कर राजा श्रेणिक अपने योग्य कोठे में बैठ गये। जैसा कि कहा गया है-

जिसकी देव में तथा देव के समान गुरु में परम भक्ति होती है उस महानुभाव के आगम में प्रतिपादित ये जीवाजीवादि पदार्थ निश्चय से प्रकट होते हैं। भावार्थ-देव और गुरु की भक्ति करने वाले पुरुष को ही जीवाजीवादि नौ पदार्थों का श्रद्धान प्रकट होता है॥१४॥

भगवान् गौतम गणधर ने कहा-

हे राजन् ! यह जीव यद्यपि द्रव्य दृष्टि से अनादि अनन्त है तथापि पर्याय दृष्टि से अपार संसार रूपी अटवी में अनादिकाल से भ्रमण कर रहा है। कभी कर्मोदय में लाघव होने से किसी तरह अकाम निर्जरा के फलस्वरूप स्थावर तिर्यञ्च और मनुष्य पर्याय को प्राप्त होता है अर्थात् स्थावर, विकलत्रय और पञ्चेन्द्रिय पर्याय में भ्रमण करता हुआ किसी प्रकार मनुष्यभव में उत्पन्न होता है। तदनन्तर महान् पुण्योदय से सद्गुरु, द्रव्यादिचतुष्टय रूप सामग्री तथा सिद्धांत ग्रन्थों को सुनने आदि से उत्पन्न भावना और सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति का पुरुषार्थ प्राप्त होता है। इन सबके मिलने पर भी यदि जीव को सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति नहीं होती है तो उसके बिना सद्गति में गमन नहीं होता है अर्थात्पुनः यह जीव कुगति को प्राप्त हो जाता है। जब कर्मों की उत्कृष्ट स्थिति का क्षय होता है अर्थात् कषाय की मन्दता के कारण जब अन्तः कोड़ी-कोड़ी सागर से अधिक कर्मों की स्थिति का क्षय होता है अर्थात् कषाय की मन्दता के कारण जब अन्तः कोड़ी-कोड़ी सागर से अधिक कर्मों की स्थिति का बन्ध नहीं होता है और सम्यक्त्व को घातने वाली प्रकृतियों का क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम हो जाता है तब बहुत भारी पुण्योदय से इसे जीवाजीवादि तत्त्वों के स्वरूप के ज्ञान से युक्त अथवा देव, गुरु, धर्म और तत्त्वों की दृढ़प्रतीति रूप सम्यग्दर्शन उत्पन्न होता है। क्योंकि-

जो दुर्गति के द्वारों को बन्द करने वाला है, समस्त संपदाओं का भण्डार है और मोक्ष सम्बन्धी सुखों को करने वाला है ऐसा सम्यग्दर्शन बहुत भारी पुण्य से प्राप्त होता है ॥१५॥

निर्मल तथा देदीप्यमान सम्यग्दर्शन की लक्ष्मी से चमत्कार को प्राप्त हुई स्वर्ग रूपी स्त्री-आश्चर्य है कि चरण-पैर की विकलता होने पर भी पक्ष में चारित्र की विकलता होने पर भी जीवों को वर लेती है। भावार्थ—जिस जीव के वर्तमान में चारित्र की विकलता होने पर भी निर्मल सम्यक्त्व विराजमान रहता है उसे शीघ्र ही सम्यक्त्व के प्रभाव से स्वर्ग प्राप्त हो जाता है॥१६॥

सम्यग्दर्शन से उत्कृष्ट दूसरी वस्तु नहीं है क्योंकि—

सम्यक्त्वरूपी रत्न से बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है, सम्यक्त्व रूपी मित्र से बढ़कर दूसरा मित्र नहीं है सम्यक्त्वरूपी भाई से बढ़कर दूसरा भाई नहीं है और सम्यक्त्व से बढ़ कर दूसरा लाभ नहीं है॥१७॥ सम्यक्त्व के बिना अन्य क्रियाओं का आडम्बर निष्फलता को प्राप्त होता है। जैसा कि कहा—

अज्ञानी जीवों का ध्यान दु:ख का भण्डार ही है, उनके तप का फल संतापमात्र है, स्वाध्याय भी निश्चय से निष्फल है, इन्द्रिय निग्रह भी दुराग्रह है, दान और शील की तुलना श्रीदायक-लाभदायक नहीं है और तीर्थादि की यात्रा व्यर्थ है। परमार्थ से सम्यक्त्व के बिना अन्य सभी कार्य भीतर से निष्फल हैं॥१८॥

अधिक क्या कहा जावे ?

सत्पुरुषों को जब तक सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती तभी तक उनका संसार सागर भयंकर रहता है, तभी तक उनकी जन्म सन्तति चलती है और तभी तक उन्हें अनेक दु:ख प्राप्त होते रहते हैं॥१९॥

सम्यग्दर्शन, तिर्यंच और नरक गति के द्वार पर लगा हुआ मजबूत आगल अन्दर जाने से रोकने वाला दण्ड है, और सम्यक्त्व ही देव, मनुष्य और मोक्ष सम्बन्धी सुखों का द्वार खोलने के लिये अद्वितीय कुंजी है॥२०॥

यदि इस जीव ने सम्यक्त्व को छोड़ा नहीं है और न सम्यक्त्व के पहले किसी आयु का बन्ध ही किया है तो सम्यक्त्व की वासना से युक्त वह जीव नियम से वैमानिक देव होता है॥२१॥

हे राजन् ! जो अन्तर्मुहूर्त के लिये भी सम्यक्त्व का पालन करता है उसका संसार-रूपी सागर सुतर सुख से तैरने योग्य हो जाता है क्योंकि-

जो जीव अन्तर्मुहूर्त के लिये भी सम्यक्त्वरूपी रत्न की उपासना कर उसे शीघ्र ही छोड़ देता है वह भी संसार के मार्ग में चिरकाल तक नहीं भटकता फिर जो उसे दीर्घकाल तक धारण करता है उसके विषय में क्या कहा जाय ?॥२२॥

राजा ने पूछा-भगवन् ! सम्यक्त्व के योग्य कैसा जीव होता है ? गुरु ने कहा-

जो भाषा शुद्धि, विवेक और वाक्यों के उच्चारण में कुशल है, शंका आदि दोषों से रहित है, गम्भीर है, शान्तभावरूपी लक्ष्मी से युक्त है, जितेन्द्रिय है, धैर्यवान् है, निश्चय और व्यवहार में चतुरता रखता है, देव और गुरु में जिसकी भक्ति है, और औचित्य आदि गुणों से जिसका शरीर अलंकृत है, ऐसा जीव सम्यक्त्व प्राप्ति के योग्य होता है॥२३॥

यह सम्यग्दर्शन धर्मरूपी कल्पवृक्ष की जड़ है, मोक्षरूपी नगर का द्वार है, संसाररूपी महासागर में बड़ा भारी जहाज है और गुणों का उत्तम स्थान है॥२४॥ काललब्धि आदि से युक्त संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्तक भव्य जीव ही सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता है॥२५॥ तत्त्वार्थ का श्रद्धान करना सम्यक्त्व है उसके १- औपशमिक, २ क्षायिक, और ३- मिश्र ये तीन भेद कहे गये हैं॥२६॥ मिथ्यात्वादि

तीन तथा अनन्तानुबन्धी- की चार इस प्रकार सात प्रकृतियों के उपशम, क्षय और क्षयोपशम से वह सम्यक्त्व होता है इसलिए ज्ञानीजन उसके तीन भेद कहते हैं॥२७॥ इन भेदों के सिवाय सम्यक्त्व के सराग सम्यक्त्व और वीतराग सम्यक्त्व ये दो भेद और भी होते हैं। इनमें से प्रशम संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्यादि भावरूप लक्षणों से युक्त सराग सम्यक्त्व है और आत्मा की शुद्धि मात्र वीतराग सम्यक्त्व है॥२८॥

वे मनुष्य धन्य हैं जो सम्यक्त्व का पालन करते हैं। क्योंकि-

सम्यग्दर्शन सब लक्ष्मियों का भण्डार है, तीर्थंकर नामकर्म के बन्ध का हेतु है। वे मनुष्य धन्य भाग्य हैं जो निश्चलरूप से सम्यग्दर्शन का पालन करते हैं॥२९॥

फिर राजा ने कहा- भगवन् पहले किसी पुण्यशाली जीव ने करोड़ों भवों में कठिनाई से प्राप्त होने योग्य ऐसे सम्यक्त्व का पालन किया है क्या ? और उस जीव को सम्यग्दर्शन के माहात्म्य से इसलोक तथा परलोक में क्या फल प्राप्त हुआ है ? इस कथा को कह कर प्रसन्नता से मेरा उपकार किया जावे । तदनन्तर मुनिराज ने कहा-हे राजन् ! सम्यक्त्व के फल को प्रकट करने वाला अर्हद्दास सेठ का कथानक सावधान होकर सुनो।

इस जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र संबंधी उत्तर मथुरा नगरी में राजा पद्मोदय रहता था उसकी रानी का नाम यशोमती था, उन दोनों के उदितोदय नाम का पुत्र हुआ। राजमंत्री का नाम संभिन्नमति था, उसकी स्त्री का नाम सुप्रभा था, उन दोनों के सुबुद्धि नाम का पुत्र हुआ। उसी तरह मथुरा नगरी में अञ्जन गुटिका आदि की विद्या में प्रसिद्ध रूपखुर नामका चोर रहता था, उसकी स्त्री का नाम रूपखुरा था, उन दानों के स्वर्णखुर नाम का पुत्र हुआ। उसी उत्तर मथुरा नगरी में जिनदत्त नाम का राज सेठ रहता था, उसकी स्त्री का नाम जिनमति था, जिनमति समस्त गुणों से सम्पन्न, जिनधर्म की प्रभावना करने वाली तथा अत्यन्त रूपवती थी। उन दोनों का पुत्र अर्हद्दास नामक सेठ भी वहीं रहता था। अर्हद्दास सेठ अच्छी तरह जाने हुए जीव, अजीव आदि सात तत्त्वों का चिन्तन करने वाला था, अपनी भुजाओं से उपार्जित धन को खर्च करता था, श्री जिनधर्म की प्रभावना करने वाला था, श्रीमान् जिनेन्द्र देव तथा श्रेष्ठ मुनिराजों की पूजा करने में सदा लीन रहता था तथा रात्रि भोजन आदि निषिद्ध खोटे कार्यों से विरक्त रहता था।

उस अर्हद्दास सेठ की मित्रश्री, चन्दनश्री, विष्णुश्री, नागश्री, पद्मलता, कनकलता, विद्युल्लता और कुन्दलता नाम की आठ स्त्रियाँ थीं जो अत्यन्त रूपवती और गुणवती थीं। परस्पर महान् स्नेह से युक्त थीं तथा दया, दान और तप

में लीन रहती थीं। वह अर्हद्दास नामका सेठ उन स्त्रियों के साथ निरुपद्रव विषयसुख को भोगता, निरतिचार श्रावकाचार का पालन करता, और अपने वैभव से कुबेर को तिरस्कृत करने वाले नागरिक जन और असार संसार को परोपकार संबंधी कार्यों से अनुरक्त–प्रसन्न करता हुआ सुख से रहता था।

अथानन्तर उदितोदय राजा प्रतिवर्ष कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा के दिन अपने वन के मध्य में कौमुदी महोत्सव कराता था। उस कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन सभी स्त्रियाँ वन में किसी देवता की पूजा करतीं और रात दिन नाना प्रकार की क्रीड़ाएँ करती थीं। यदि वह उत्सव नहीं किया जाता तो नगर में दु:ख होता था। उस सारे देश में वह कौमुदी महोत्सव सिंहस्थ वर्ष के समान बारह वर्ष से चला आ रहा था। तदनुसार उस दिन कार्तिक मास की पूर्णिमा के दिन राजा ने कौमुदी महोत्सव के निमित्त नगर में भेरी द्वारा घोषणा दिलवायी–जैसे–

हे नागरिक जनो ! आज के दिन नगर में रहने वाली समस्त स्त्रियाँ वन क्रीड़ा करने के लिये जावें, रात्रि में वहीं रहें और सभी पुरुष नगर के भीतर रहें। यदि कोई पुरुष वन के मध्य स्त्रियों के समीप जावेगा तो वह राजद्रोही कहलावेगा। नृत्य, गान तथा विनोद आदि से सहित क्रीड़ा कर सब स्त्रियाँ बड़े भारी उत्सव से अपने नगर में आवें। इस प्रकार बहुत भारी सुख से राजा राज्य करता था। जैसा कि कहा है–

राजाओं की आज्ञा को भङ्ग करना, पूज्य पुरुषों का अपमान और स्त्रियों की पृथक् शय्या, यह बिना शस्त्र के होने वाला वध कहलाता है॥३०॥

राजा ने जैसा कहा था लोगों ने वैसा ही किया, कोई भी मनुष्य वन को नहीं गये। जैसा कि कहा गया है–

राज्य का फल आज्ञा मात्र है, तप का फल ब्रह्मचर्य है, विद्या का फल ज्ञान मात्र प्राप्त करना है और धन का फल दान करना तथा स्वयं भोग करना है॥३१॥

राजा ने वन में गयी हुई सब स्त्रियों की रक्षा करने के लिये चारों दिशाओं में सावधान योद्धाओं की स्थापना कर रक्षा की। क्योंकि–

स्त्रियाँ बाल्यावस्था में पिता के द्वारा यौवनावस्था में पति के द्वारा और वृद्धावस्था में पुत्र के द्वारा रक्षा करने योग्य हैं अन्यथा कुल में कलंक लग सकता है॥३२॥ स्त्रियों में, राजकुल में, सर्प में, समान बल वाले शत्रु में और शस्त्र के अग्रभाग में कभी विश्वास नहीं करना चाहिये॥३३॥ नदियों का, हाथ में शस्त्र धारण करने वालों का, बड़े-बड़े नख वाले जीवों का, सींग वाले प्राणियों का, स्त्रियों का तथा राजकुल का विश्वास नहीं करना चाहिये॥३४॥

जब राजा ने अपनी आज्ञा के अनुरूप प्रवर्तने वाली नाना प्रकार के श्रृङ्गार को धारण करने वाली और उद्यान में जाने के लिये तत्पर समस्त स्त्रियों को देखा तब उसने नगर वासी पुरुषों को बुलाकर आज्ञा दी कि हे नागरिक जनो ! आप लोग, नगर के भीतर ही अपने-अपने विनोदों और क्रीडा आदि के द्वारा शीघ्रता करते हुए रहें। तब सेठ ने विचार किया कि आज मैं अपने परिजनों के साथ भगवान् की पूजा कैसे करूँगा ? इस प्रकार एक क्षण विचार कर उसने उपाय का विचार किया और सुवर्ण के थाल को रत्नों से भर कर वह राजकुल में गया। राजा के आगे थाल को रखकर उसने प्रणाम किया। तत्पश्चात् राजा ने पूछा- हे सेठ जी। आगमन का कारण कहो। सेठ ने नम्रीभूत सिर पर जुड़े हुए हाथ लगा कर कहा-

हे राजन् ! आज मैंने श्री वर्द्धमान स्वामी के आगे चार माह का नियम लिया है कि इस तरह पर्व के दिन जिन मन्दिरों में विधिपूर्वक प्रतिमाओं की पूजा और साधुओं की वंदना करूँगा। रात्रि के समय एक महल में महापूजा करूँगा और गीत, नृत्य आदि करूँगा..... ऐसा नियम मैंने लिया है सो जिस तरह मेरा नियम भंग न हो और आपकी आज्ञा का पालन हो जाय ऐसी आज्ञा दीजिये।

यह सुनकर राजा ने मन में विचार किया कि 'अहो' ! इसे धर्म का बड़ा निश्चय है। इस पुण्यात्मा से हमारा नगर सुशोभित हो रहा है। यदि इस प्रकार के मनुष्य मेरे नगर में अधिक होते तो विषयों की आशा रूपी पाश से जिनका चित्त बद्ध है तथा बहुत बड़े राज्य के व्यापार से संचित पाप से जिनका चित्त मलिन हो रहा है ऐसे हम लोगों का भी यह आश्रय होता, क्योंकि कार्य की अनुमोदना से पुण्य का विभाग होता है। इत्यादि विचार कर राजा ने कहा— धन्य हो, तुम कृत-कृत्य हो, और तुम्हारा मनुष्य जन्मसफल है क्योंकि तुम इस प्रकार के कौमुदी उत्सव में भी धर्म का उद्योग कर रहे हो। तुमसे हमारा राज्य सुशोभित है इसलिये तुम निःशङ्क होकर सब समूह के साथ अपने सभी धर्म कार्य करो। मैं भी उसकी अनुमोदना करता हूँ। इतना कह कर राजा ने उसका रत्न थाल वापिस कर रेशमी वस्त्र आदि से सम्मान किया और बड़ी प्रसन्नता से उसे विदा किया। तदनन्तर हर्ष से भरे हुए सेठ ने अपने समूह के साथ बड़े भारी उत्सव से चैत्य वन्दना आदि उस दिन का समस्त कार्य समाप्त किया और रात्रि में विशेष समारोह से अपने गृह चैत्यालय में महापूजा कर जिनेन्द्र भगवान् के आगे परम भक्ति से स्वयं ही मर्द्दल (मृदंग) नामक बाजा बजाकर देवों के भी मन को हरने वाला दुर्लभ नृत्य प्रारम्भ किया।

अर्हद्दास सेठ की जो आठ स्त्रियाँ थीं वे भी अपने स्वामी के अनुकरण तथा धर्म बुद्धि से मधुर जिन गुणगान, तालमान के साथ भेरी आदि बाजों के शब्द

तथा नृत्य कर रही थीं। नगरवासी लोग भी उत्तम विनोदों से दिन को व्यतीत कर रात्रि के समय अपने मन्दिर में स्थित थे। इस प्रकार सूर्य अस्त हो गया और चन्द्रमा का उदय हो गया। उस समय पश्चिम दिशा में लालिमा छा गयी थी और पूर्व दिशा का मुख श्याम पड़ गया था जिससे ऐसा जान पड़ता था मानों उस समय पश्चिम दिशा और सूर्य के समागम में राग-प्रीति (पक्ष में लालिमा) को देखकर पूर्व दिशा ने अपना मुख श्याम कर लिया था सो ठीक ही है क्योंकि स्त्रियाँ ईर्ष्या से रहित नहीं होती ॥३५॥

इसी बीच चन्द्रोदय होने पर काम से पीड़ित राजा ने अपनी रानी का स्मरण किया। काम से पीड़ित होने के कारण राजा की नींद चली गयी थी, उससे ऐसा जान पड़ता था मानो प्रिया से रहित इस राजा के हृदय में चिन्ता आ गयी थी, इसी हेतु नींद चली गयी थी। जैसा कि कहा है-

प्रिया से रहित इस राजा के हृदय में चिन्ता रूपी स्त्री आ गयी है। यह मानकर ही मानो निद्रा रूपी स्त्री चली गयी थी सो ठीक ही है क्योंकि कृतघ्न की उपासना कौन करते हैं ? अर्थात् काई नहीं ॥३६॥

उस समय कमलिनियों के कमल बन्द हो गये थे जिससे ऐसा जान पड़ता था मानो अपने उपकारी प्रियबन्धु सूर्य को किरण रहित तथा नीचे पड़ता हुआ देखकर कमलिनी रूपी स्त्रियों ने दु:ख से ही कमलरूपी नेत्र बन्द कर लिये थे॥३७॥

निद्रा को न प्राप्त करता हुआ राजा भी मन्त्री से बोला। हे मन्त्री ! जहाँ स्त्रियाँ हाव भाव सहित क्रीड़ा करती हैं उस उद्यान में विनोद के लिए चलना है।राजा के यह वचन सुन सुबुद्धि नामक मन्त्री ने कहा-हे देव ! इस समय उद्यान गमन करने पर बहुत से नागरिकों के साथ विरोध हो जावेगा और विरोध होने पर राज्यादि का नाश हो जावेगा जैसा कि कहा है—

एक के भी विरोध से मनुष्य विपत्ति को प्राप्त होता है भले ही वह मनुष्य बड़ा भी हो और कुलीन भी हो। जब एक के विरोध से भी विपत्ति को प्राप्त होता है तब बहुतों के साथ विरोध होने का क्या कहना है ? ॥३८॥

बहुतों के साथ विरोध नहीं करना चाहिये क्योंकि महाजन दुर्जय होता है। चींटियाँ बड़े भारी नागेन्द्र- सर्पराज को खा जाती है॥३९॥

मन्त्री के वचन हृदय में जानकर राजा ने अवज्ञा और अभिमान से कहा-हे नियोगी-उखाड़े हुए समस्त शत्रुरूप कंद से उत्पन्न वीररस से जो समृद्ध हो रहा है ऐसे मेरे क्रुद्ध होने पर ये बेचारे क्या करने में समर्थ हैं ? जैसा कि कहा है-

जन्म से लेकर बँधे हुए बैर से कठोर चित्त को छोड़कर यदि घोड़ो ने आदर पूर्वक इस समय भेड़ियों के साथ मित्रता कर ली है तो क्या वे हाथियों के गण्डस्थल पर लोटने से लगे हुए मोतियों की ज्योति से जिसकी गर्दन के बाल सुशोभित हो रहे हैं क्या ऐसे सिंह के सामने भी खड़े हो सकते हैं ? अर्थात् नहीं॥४०॥

मन्त्री ने कहा -हे राजन् ! सत्पुरुषों द्वारा अपने आप अपने पौरुष आदि गुण प्रकाशित नहीं किये जाते अर्थात् सत्पुरुष अपने गुणों की स्वयं प्रशंसा नहीं करते हैं। जैसा कि कहा है-

जिस प्रकार युवती के स्तन स्वयं ग्रहण किये हुए सुख उत्पन्न नहीं करते हैं उसी प्रकार पुरुषों के गुण स्वयं ग्रहण किये हुए सुख और सौभाग्य को नहीं करते हैं किन्तु दूसरों के द्वारा ग्रहण किये हुए दोनों के सुख को विस्तृत करते हैं इसलिये स्वयं गुणों की प्रशंसा करना ठीक नहीं है॥४१॥ और भी कहा हैं-

स्वयं अपनी प्रशंसा करता हुआ कोई मनुष्य गौरव को प्राप्त नहीं होता है निश्चय से दूसरों के मुख से प्रशंसा को प्राप्त हुए गुण, गुणपने को प्राप्त होते हैं॥४२॥

हे राजन् ! यद्यपि सभी लोग पृथक्-पृथक् रहकर कोई भारी कार्य करने के लिये असमर्थ हैं तथापि इनका समूह एकत्रित होने पर तृणों के समान उनमें सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है। जैसा कि कहा है-

बहुसंख्यक निःसार निर्बल लोगों का समुदाय भी वास्तव में भयंकर होता है क्योंकि जो रस्सी सारहीन तृणों से बनाई जाती है उसके द्वारा हाथी भी बाँधा जाता है॥४३॥

हे राजन् ! समुदाय होने से एकत्रित होने के कारण असमर्थ प्राणियों में उसी क्षण सामर्थ्य उत्पन्न हो जाती है इसलिये दुराग्रह छोड़ो॥४४॥

राजा ने फिर कहा—हे मन्त्रिन् ! यदि समर्थ मनुष्य एक है तो उसी के द्वारा कार्य पूर्ण हो जाता है, शक्तिहीन समूह से क्या होता है ? जैसा कि कहा है-

जो शक्ति से सम्पन्न होता है वह एक होकर भी अर्थात् अकेला ही समस्त कार्यों को करने में समर्थ होता है अतः शक्ति से हीन बहुत मनुष्यों से क्या लाभ है ? चन्द्रमा अकेला ही दिङ्मण्डल को प्रकाशित कर देता है परन्तु ताराओं का समूह इकट्ठा होकर भी दिङ्मण्डल को प्रकाशित करने में असमर्थ ही रहता है॥४५॥

मन्त्री ने फिर कहा--

हे राजन् ! तुम्हारा विनाश-काल आ गया है अन्यथा विपरीत बुद्धि नहीं होती। जैसा कि कहा है--

सुवर्ण की मृगी पहले किन्हीं के द्वारा न बनायी गई है, न पहले देखी गई है और न सुनी गयी है तो भी रामचन्द्र जी को उसकी तृष्णा लग गयी। सो ठीक ही है क्योंकि विनाश-काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है॥४६॥

फिर भी मन्त्री ने कहा—हे राजन् ! बहुत मनुष्यों के साथ विरोध होने पर विनाश के सिवाय अन्य कुछ नहीं होता। इस विषय में सुयोधन राजा की कथा सावधान होकर सुनो। जैसा कि हस्तिनागपुर नगर में सुयोधन राजा दुष्टों का निग्रह और सज्जनों का पालन करता था। उसकी पट्टरानी कमला थी, उन दोनों के गुणपाल नाम का पुत्र था और पुरूषोतम नाम का मन्त्री था। जैसा कि स्पष्ट है—

जिनकी बुद्धि राजा और प्रजा के हित में लग रही है, जो नीति शास्त्र को धारण करने वाले हैं, समस्त परिग्रह के विषय में जो सदा ही विशुद्ध रहते हैं— कभी लालच में पड़कर अनीति नहीं करते हैं, शुद्धवंश वाले हैं, मध्यस्थभाव को प्राप्त हैं किसी के साथ पक्षपात नहीं करते हैं और अधिकार युक्त हैं अपने दायित्व के कार्य पूर्ण करते हैं, निश्चय से वे ही मन्त्री राजा का कल्याण करने वाले होते हैं॥४७॥

वह पुरुषोत्तम मंत्री साम, दाम, भेद, और दण्ड इन चारों राज विद्याओं का ज्ञाता होने से राजा को अत्यन्त प्रिय था। कहा भी है-

जिनका मन्त्र कार्य के अनुरूप है और कार्य स्वामी के हित के अनुरूप है वे ही मन्त्री राजाओं के मंत्री होने के योग्य हैं, जो मात्र गाल फुलाने वाले हैं-व्यर्थ की बात करने वाले हैं, मन्त्री होने के योग्य नहीं हैं॥४८॥

वहाँ स्वामी के कार्य में लीन रहने वाला कपिल नामका पुरोहित रहता था जो जप, होम, विधान और आशीर्वाद के देने में सावधान था। उसकी स्त्री का नाम लक्ष्मी और पुत्र नाम देवपाल था। कहा भी है-

जो वेद और वेदाङ्ग के रहस्य को जानने वाला है, जप और होम करने में तत्पर रहता है तथा आशीर्वाद देने में लीन रहता है, वही राजा का पुरोहित हो सकता है॥४९॥

यमदण्ड नाम का कोतवाल था, उसकी स्त्री का नाम धनवती था और दोनों के वसुमति नाम का पुत्र था। इस प्रकार सुयोधन राजा राज्य करता था। एक समय सभा में स्थित राजा के आगे गुप्तचर ने कहा -हे राजन् ! तुम्हारा देश शत्रुओं से उपद्रुत हो रहा है-शत्रु तुम्हारे देश में उपद्रव कर रहे हैं। गुप्तचर के वचन सुन राजा ने कहा वैरियों के समूह पृथ्वीतल पर तभी तक दिखायी दे लें जब तक वे

यमराज के समान मेरी तलवार के सामने नहीं पड़ते। राजा ने फिर कहा–हे नियोगी ! जब तक मैं आलस्य रूपी निद्रा से मुद्रित नयन हूँ तब तक शत्रु गलगर्जना कर लें, मेरे चतुरङ्ग सेना से युक्त हो दिग्विजय के लिये उद्धत होने पर उनको दिङ्भ्रम ही होगा, अन्य कुछ नहीं।

कहा भी है-

जब तक सिंह निद्रा से नेत्र बन्द कर गुहा का सेवन करता है– तब तक स्वच्छन्दता से विचरने वाले ये हरिण इच्छानुसार घूमते हैं किन्तु उनींदे और जिसकी सटाओं का समूह कम्पित हो रहा है ऐसे बाहर निकले सिंह का शब्द कान में पड़ता है–सुनायी देता है तब इनकी बुद्धि मारी जाती है और इन्हें दिशाएं शून्य दिखने लगती हैं॥५०॥

मद के भार से अलसाये हाथी वन में तब तक गरजते हैं जब तक शिर पर पूंछ लगाये हुए सिंह नहीं आता है॥५१॥

और भी कहा है–

कुए में रहने वाले मेंढक तब तक अच्छी तरह गरजते हैं जब तक हाथी की सूंड के आकार वाला सर्प दिखायी नहीं देता है॥५२॥

ऐसा कह कर चतुरङ्गसेना से युक्त राजा ने शत्रु के प्रति प्रस्थान का उद्यम किया। तदनन्तर वीरों को संतुष्ट कर राजा ने कहा– हे वीरो ! सुनो, आपका यह अवसर है। क्योंकि–

सेवकों को युद्ध में भेजने के समय, भाईयों को संकट के आने पर, मित्र को विपत्ति के समय और स्त्री को सम्पत्ति नष्ट हो जाने पर जानना चाहिये ॥५३॥

आलसी, बकवादी, अहंकारी, लोभी, व्यसनी, मूर्ख, असंतोषी और अभक्त सेवक को राजा छोड़ देवे॥५४॥

यदि राजा अपनी भलाई चाहता है तो भक्त, समर्थ और कुलीन सेवक का कभी अपमान न करे किन्तु पुत्र के समान उस पर प्यार करे॥५५॥

जिस प्रकार किरणों से रहित सूर्य तेजस्वी होने पर भी सुशोभित नहीं होता है उसी प्रकार सेवकों से रहित राजा लोकोपकारी होने पर भी सुशोभित नहीं होता॥५६॥

ऐसा जानकर राजा को उन्हें ही सेवक बनाना चाहिये जो चतुर हों, कुलीन हों, शूरवीरता से युक्त हों, समर्थ हों, भक्त हों और क्रमागत परम्परा से चले आ रहें हों॥५७॥

तदनन्तर बाहर निकलते समय राजा ने यमदण्ड कोटपाल से कहा-हे यमदण्ड ! तुम्हें बड़े यत्न से प्रजा की रक्षा करनी चाहिये। उसने कहा - यह आपका महाप्रसाद है। यमदण्ड कोतवाल के लिये और भी कार्य बतलाकर राजा दिग्विजय के लिये निकल पड़ा। उस दिन से लेकर यमदण्ड ने सब मनुष्यों को आनन्दित करने वाला संरक्षण किया। राजकुमारों को आदि लेकर सभी नागरिक अनुकूल कर लिये।

कुछ दिनों में शत्रु को जीतकर तथा अपने शत्रु का सर्वस्व अपहरण कर राजा अपने नगर को लौट आया। स्वागत के लिये सामने आये हुए महाजनों का सम्मान कर राजा ने उनसे कहा - हे महाजनों ! तुम सब सुख से रहते हो । महाजनों ने कहा - हे स्वामिन् ! यमदण्ड के प्रसाद से सुख से रहते हैं। कुछ काल तक विलम्ब कर तथा मान देकर राजा ने लोगों से फिर भी पूछा तो उन्होनें वैसा ही कहा। तदनन्तर महाजनों को विदाकर राजा ने मन में विचार किया। अहो! इस यमदण्ड ने सभी लोगों को अपने अधीन कर लिया। यह दुष्टात्मा मेरा राजद्रोही है। जिस किसी उपाय से मैं इसे मारता हूँ। जैसा कि कहा गया है -

जो कर्मचारियों के हाथ में राज्य का भार सौंप कर स्वच्छन्दतापूर्वक विहार करते हैं वे मूर्ख राजा, मानो बिलावों के समूह को दूध का समूह सौंपकर सोते हैं॥५८॥

इस प्रकार अपमान से रहता हुआ राजा किसी से कुछ नहीं कहता था। क्योंकि-

बुद्धिमान् मनुष्य धनहानि, मन का संताप, घर में हुए दुश्चरित्र, ठगाई और अपमान को प्रकाशित न करें॥५९॥

सिद्ध किया हुआ मन्त्र, अनुभूत औषधि, धर्म, घर के छिद्र, मैथुन, खोटा भोजन और खोटा सुना कभी प्रकाशित नहीं करना चाहिये॥६०॥

एक समय यमदण्ड कोतवाल ने चाल-ढ़ाल से राजा को दुष्ट अभिप्राय से युक्त जानकर अपने मन में विचार किया-अहो ! मैंने यद्यपि अच्छा राज्य किया है तथापि राजा जो अपनी दुष्टता नहीं छोड़ रहा है इसलिये 'राजा किसी के वश नहीं होता' यह कहावत सत्य है। जैसा कि कहा है-

कौए में पवित्रता, जुआरी में सत्य, नपुंसक में धैर्य, मदिरा पीने वाले में तत्त्व विचार, साँप में क्षमा, स्त्रियों में काम की शान्ति और राजा मित्र किसने देखा और सुना है॥६१॥

और भी कहा है -

धन को प्राप्त कर कौन अहंकारी नहीं हुआ ? किस विषयी मनुष्य की आपदाएँ नष्ट हुई हैं ? पृथिवी पर स्त्रियों के द्वारा किसका मन खण्डित नहीं हुआ ? राजाओं का प्यारा कौन है ? काल की गोचरता को कौन प्राप्त नहीं हुआ है ? कौन मनुष्य धन से गौरव को प्राप्त हुआ है ? दुर्जन के ज़ाल में पड़ा हुआ कौन पुरुष सुख से निकला है ? अर्थात् कोई नहीं॥६२॥

कितना ही समय निकल गया। एक समय राजा ने पुरोहित सहित मन्त्री को बुलाया और अपने मन का अभिप्राय बता कर उनसे कहा यह यमदण्ड दुष्ट अभिप्राय वाला है। इसलिये उपाय से मारने के योग्य है। तदनन्तर मन्त्री और पुरोहित राजा के कहे अनुसार ही विचार किया। क्योंकि-

जैसी होनहार होती है वैसी बुद्धि होती है, पुरुषार्थ वैसा होता है और सहायक भी वैसे ही प्राप्त होते हैं॥६३॥

राजा, मन्त्री और पुरोहित—तीनों ने मिलकर किसी उपाय का निश्चय किया। तदनुसार एक दिन राजा ने खजाने में कुदारी चलाकर संधिकर वहाँ रखी हुई वस्तुयें किसी अन्य सुरक्षित स्थान में रख दीं। यह सब कर शीघ्रता से अपने स्थान पर हल्ला किया कि खजाने में चोरी हो गयी। यमदण्ड को बुलाने के लिए सेवक भेजे गये। यमदण्ड ने मन में विचार किया कि आज मेरी मृत्यु आ पहुँची है। क्योंकि कहा है—

निश्चय से पृथिवीतल पर राजा का क्रोध, दुर्व्यवहार से युक्त, दुःख से देखने योग्य, दुष्ट अभिप्राय से सहित, दुःख से शमन करने के योग्य, दुर्घट, दुष्ट, और दुःख से सहन करने के योग्य होता है॥६४॥

दूसरी बात यह भी है कि कुपित मनुष्य में ज्ञातापन कहाँ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।

राजा के क्रोध से कवि-अकवि,चतुर-अचतुर, शूरवीर-भयभीत, दीर्घायु-क्षीण आयु और कुलीन मनुष्य कुलहीन हो जाता है॥६५॥

ऐसा निश्चय कर यमदण्ड राजमहल गया। उसे देखकर राजा ने कहा—हे यमदण्ड ! तुम महाजनों की रक्षा करते हो परन्तु मेरे ऊपर उदासीनता वर्तते हो। आज मेरे खजाने में स्थित सब वस्तुएँ चोर ले गये हैं। वे वस्तुएँ और चोर शीघ्र ही देने के योग्य हैं नहीं तो तुम्हारा शिरच्छेद करुँगा—गला कटवा दूँगा राजा के यह वचन सुनकर यमदण्ड सन्धि को देखने के लिये गया। वहाँ सन्धि के अग्रभाग पर खड़ाऊँ, अंगूठी और जनेऊ देखकर इसने उन्हें उठा लिया। और खड़ाऊँओं से राजा, मुद्रिका से मन्त्री

तथा जनेऊ से पुरोहित को चोर जान लिया। पश्चात् उसने मन में विचार किया–अहो! यदि राजा ही ऐसा करता है तो किसके आगे कहा जावे ? जैसा कि कहा है–यदि बाड़ ही द्वीप को उजाड़ने लगें, राजा ही यार हो जावे और विद्वान् ही पाप करने लगें तो फिर इस संसार में रोकने वाला कौन हो सकता है ? ॥६६॥

यह कोलाहल सुनकर सभी नगरवासी लोग इकट्ठे होकर आ गये। राजा ने उनके सामने सब समाचार कहा। नगरवासियों ने अहा–हे तात ! इसे सात दिन देने के योग्य हैं। सात दिन के अनन्तर यदि यह वस्तुएँ और चोर को नहीं देता है तो हे देव ! श्रीमान् ने जो विचार किया है वह किया जाय। राजा ने महाजनों के द्वारा कहे हुए वचन को बड़े कष्ट से स्वीकृत किया।

इस बात को अच्छी तरह जानकर नागरिक लोग अपने अपने घर गये। इधर यमदण्ड ने राजपुत्र आदि सब समाज को एकत्रित कर कहा–मुझे क्या करना चाहिये ? ऐसी अवस्था मेरी आ पहुँची है। महाजनों ने कहा–भय नहीं करो। तुम्हारी रक्षा के लिये उद्यत रहते हुए इस नगर में कभी चोरी नहीं हुई है। यह चोरी तुम्हारे अथवा राजा के भेद से हुई है। तुम दोनों के बीच में जो दुष्ट होगा उसका हम लोग निग्रह करेंगे। यमदण्ड ने कहा ऐसा होना चाहिये।

तदनन्तर यमदण्ड धूर्तवृत्ति–कृत्रिम रूप से चोर की खोज करने लगा। वह पहले दिन राजसभा में गया और राजा को नमस्कार कर बैठ गया। राजा ने पूछा–हे यमदण्ड ! तूने चोर देखा ? यमदण्ड ने कहा हे स्वामिन् ! मैने सर्वत्र चोर की खोज की परन्तु कहीं भी दिखा नहीं। राजा ने फिर कहा–इतने काल तक आप कहाँ रहे ? यमदण्ड ने कहा हे–देव ! एक स्थान पर कोई कथा वाचक कथा कर रहा था। मैंने वह कथा सुनी इसलिये बहुत समय लग गया। राजा ने कहा–हे यमदण्ड ! तू कथा के द्वारा अपने मरण को क्यों भूल रहा है? आश्चर्यपूर्ण उस कथा को मेरे आगे कहो। उसने कहा–राजन् ! सावधान होकर सुनो। मैं वह कथा कहता हूँ। जैसा कि कहा है–

हम उपद्रव रहित उस वृक्ष पर बहुत समय रहे परन्तु अब उस वृक्ष की जड़ में एक लता उत्पन्न हुई है। उसके कारण मरण का भय उत्पन्न हो गया है॥६७॥

कथा का सार यह है कि एक वन के मध्य में कीचड़ आदि के दोषों से रहित, तथा सहस्त्र दल आदि कमलों के समूह मानसरोवर के समान बड़ा भारी सरोवर है। उस सरोवर की पाल के ऊपर देवदार का एक ऊँचा वृक्ष है। उस वृक्ष के ऊपर बहुत हंस रहते हैं।

एक समय वृद्ध हंस ने उस वृक्ष की जड़ में लता का अंकुर देखा। तदनन्तर पुत्र-पौत्र आदि के हित के लिये वृद्ध ने कहा-हे पुत्र-पौत्रो ! वृक्ष की जड़ में उगते हुए इस लता के अंकुर को तुम लोग चोंचो के प्रहार से तोड़ डालो नहीं तो सबका मरण हो जायगा। वृद्ध के यह वचन सुन जवान हंसों ने हँस दिया। कहने लगे-अहो ! यह बूढ़ा मरने से डरता है, सदा जीवित रहना चाहता है। इसे यहाँ बिना कारण ही भय दिख रहा है। अपने पुत्र और पौत्रों के ऐसे वचन सुन वृद्ध हंस ने मन में विचार किया-अहो ! ये महामूर्ख अपने हित का उपदेश नहीं जानते परन्तु क्रोध ही करते हैं। कहा भी है-

तत्त्व को न समझने वाले मूर्खों के साथ वार्तालाप करने में चार फल हैं- १. वचन का व्यय, २. मन का संताप, ३. अपवाद और ४. पिटाई ॥६८॥

प्राय: कर मूर्ख के लिये समीचीन मार्ग का उपदेश देना उसके क्रोध को उस प्रकार बढ़ने वाला होता है जिस प्रकार कि नकटे के लिये निर्मल दर्पण का दिखाना ॥६९॥

पश्चात् वृद्ध हंस ने अपने मन में कहा-मूर्खों के साथ बात करने पर जब उसका फल होता है तब उसकी प्रकटता होती है। ऐसा मन में निश्चय कर वह चुप बैठ गया। कुछ समय के बाद वह लता वृक्ष के ऊपर चढ़ गयी। एक समय उस लता को पकड़ कर शिकारी वृक्ष के ऊपर चढ़ गया। वहाँ उसने अपने जाल फैला दिये। जो हंस दिन में दसों दिशाओं को गये थे। वे सोने के लिये उस वृक्ष पर आये और सभी पक्षी वृक्ष पर बैठते ही रात्रि के समय शिकारी के जाल में बँध गये। उनका कोलाहल सुनकर वृद्ध हंस ने कहा -हे पुत्रो ! मेरा उपदेश तुम लोगों ने पहले नहीं माना। अब तुम मूर्खों का का मरण आ गया है।

जहाँ पास में बैठा हुआ बकवादी टिड्डा कटुक शब्द कर रहा है वहाँ निश्चय से राजहंस पक्षी का दूर हट जाना ही उचित है॥७०॥

जैसा कि कहा है-

बुद्धि अच्छी है वह विद्या अच्छी नहीं है। विद्या की अपेक्षा बुद्धि श्रेष्ठ होती है। जिस प्रकार सिंह को बनाने वाले वे विद्वान् नष्ट हो गये थे उसी प्रकार बुद्धिहीन मनुष्य नष्ट हो जाते हैं॥७१॥

तरुण हंस ने कहा-यह कैसे ? वृद्ध हंस ने कहा-सुनो !

किसी प्रदेश में पौण्ड्रवर्धन नाम का नगर था। वहाँ शिल्पकार, चित्रकार, वणिक्पुत्र और मन्त्रसिद्ध ये चार मित्र अपने शास्त्रों के पारगामी थे। एक समय चारों किसी दूसरे देश को चले। तदनन्तर वे चलते-चलते अपराङ्ह काल में एक

भयंकर वन को प्राप्त हुए। पश्चात् उस वन के बीच शिल्पकार ने अपने तीनों साथियों से यह वचन कहा, अहो ! हम लोग रात्रि के समय ऐसे भयंकर स्थान आ पहुँचे हैं। इसलिए एक-एक को एक-एक पहर तक जागना चाहिये नहीं तो चोर अथवा जंगली जानवर के भय से कुछ विघ्न होगा। तदनन्तर उन्होंने कहा-हे मित्र ! आपने यह ठीक कहा है इसलिये अवश्य ही जागेंगे ऐसा कह कर वे तीनों सो गये।

तदनन्तर उस शिल्पकार ने नींद भगाने के लिये एक काठ लाकर अत्यन्त दैदीप्यमान समस्त अवयवों से युक्त सिंह का आकार बनाया। पश्चात् चित्रकार के पास गया और बोला- हे मित्र ! अपने पहर में जागने के लिये उठो, उठो। ऐसा कहकर शिल्पकार सो गया। तदनन्तर जब चित्रकार उठा तो उसने आगे लकड़ी से बना हुआ अत्यन्त सौन्दर्य से युक्त सिंह का आकार देखा। पश्चात् वह बोला-अहो ! इस उपाय से इसने नींद भगाई है, इसलिये मैं भी कुछ करुँगा। ऐसा कहकर उसने पीले, लाल और काले आदि रंगों को पत्थर के ऊपर घिसकर लकड़ी के सिंह को चित्राम से युक्त कर दिया।

इसके पश्चात् चित्रकार मन्त्र सिद्ध के पास गया और बोला। हे मित्र ! शीघ्र उठो। ऐसा कहकर चित्रकार सो गया। तदनन्तर ज्यों ही मन्त्रसिद्ध उठता है त्यों ही सामने उस लकड़ी के सिंह को महा भयंकर और सब अवयवों से सहित जीवंत जैसा देखकर डर गया। पश्चात् बोला- अब क्या करना चाहिये ? यहाँ हम सब का मरण अवश्य आ पहुँचा है। ऐसा कहकर धीरे-धीरे जाकर मित्र से बोला। अहो ! उठो, उठो, इस अटवी के बीच एक जंगली जानवर आ गया है। इस प्रकार उसका कोलाहल सुनकर तीनों साथी उठ गये। पश्चात् बोले-हे मित्र ! क्यों इस तरह व्याकुल कर रहे हो ! वह बोला-अहो ! देखो देखो, यह जानवर मेरे द्वारा मन्त्र से कीलित है इसलिए सामने नहीं आता है। यह सुन तीनों साथियों ने हँसकर कहा-हे मित्र ! यह लकड़ी का जानवर है ऐसा क्या तुम नहीं जानते। हम दोनों ने उस लकड़ी से निर्मित सिंह के आकार पर अपनी विद्या का प्रभाव दिखलाया है। यह सुनकर मन्त्रसिद्ध पास जाकर जब देखता है तब बहुत लज्जित हुआ।

तदनन्तर बोला-अहो ! इस प्रसङ्ग से आप दोनों ने इस लकड़ी के सिंह पर अपनी विद्या की कुशलता दिखलायी है। इसलिये अब मेरी विद्या का कुतूहल देखो। यदि इस लकड़ी के सिंह को जीवत न कर दूँ तो मैं मन्त्रसिद्ध न रहूँ। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध का वचन सुन बुद्धिमान् वणिक्पुत्र ने मन में विचार किया। अहो ! यदि किसी प्रकार इस लकड़ी के सिंह को जीवित कर देगा तो सबका विनाश हो जावेगा। इसलिये मैं दूर खड़ा होकर यह सब देखूँगा क्योंकि मणि, मन्त्र

और औषधि का प्रभाव अचिन्त्य होता है।

ऐसा विचारकर वह वणिक्पुत्र ज्योंही जाने लगा त्योंही शिल्पकार और चित्रकार उससे बोले-हे मित्र ! तुम क्यों जा रहे हो ? पश्चात् वणिक्पुत्र ने कहा-अहो ! लघु शंका करके आऊँगा। ऐसा कहकर जब वह चला तब उसने सामने एक वृक्ष देखा ! कैसा वृक्ष देखा ? तथाहि-

जिसकी छाया में मृग सोते हैं, जिसके हरे भरे पत्ते पक्षियों के समूह से व्याप्त रहते हैं, जिसकी कोटर क्रीड़ों से युक्त है, जिसके स्कन्ध पर वानरों के समूह आश्रय पाते हैं, भ्रमर निश्चिन्त होकर जिसके फूलों का रस पान करते हैं और जो समस्त अङ्गों से अनेक प्राणियों के समूह को सुख देने वाला है वही वृक्ष प्रशंसनीय है शेष वृक्ष पृथ्वी के भारस्वरूप हैं॥७२॥

और भी कहा है-

मार्ग को छोड़कर पर्वत की कन्दरा और गुफाओं के समीप यदि वृक्ष फलते हैं तो फलें उन से क्या लाभ है ? जिस वृक्ष की शाखाओं के अग्रभाग में उत्पन्न होने वाले फूलों और फलों को पथिक ग्रहण करते हैं वह वृक्ष धन्य हैं॥७३॥

और भी-

जो मञ्जरियों से कोयलों के समूह का, पराग से भ्रमरों का और फलों से पथिक जनों का निरन्तर उपकार करता है, ऐसे ही मार्ग के आम्र वृक्ष ! तुम चिरकाल तक समृद्धि युक्त रहो-निरन्तर फलो फूलो॥७४॥

इस प्रकार के वृक्ष पर चढ़कर वणिक्पुत्र सब कुछ देखने लगा। तदनन्तर मन्त्रसिद्ध ने ध्यान स्थित होकर तथा मन्त्र का स्मरण कर उस लकड़ी के सिंह में जीव कला डाल दी-उसे जीवित का दिया (उसमें किसी व्यंतर आदि देव का प्रवेश करा दिया)। पश्चात् जीवित होकर जिसने अत्यन्त भयंकर अट्टहास किया है, जिसका पञ्जा ऊपर की ओर उठ रहा है, जिसके नेत्र खैर के अंगारे के समान लाल हैं जिसकी सुन्दर पूँछ की सटा ऊपर की ओर उछल रही है तथा जो अत्यन्त भयंकर है ऐसा वह सिंह तीनों के सन्मुख होकर क्रम-क्रम से तीनों पर टूट पड़ा। इसलिये मैं कहता हूँ कि बुद्धि अच्छी है विद्या नहीं।

हंसों ने वृद्ध हंस से कहा-हे तात ! कार्य के नष्ट हो जाने पर भी जो बुद्धि को नहीं छोड़ता है वह प्रमाद को प्राप्त नहीं होता। जैसा कि कहा है--

कार्यों के नष्ट हो जाने पर भी जिसकी बुद्धि नष्ट नहीं होती है वह कार्यों को पूरा करता है जैसा कि जल के समीप रहने वाला वानर॥७५॥

वृद्ध हंस ने कहा—हे पुत्रो ! कार्य के नष्ट हो जाने पर क्या उपाय है ? जैसा कि कहा है-

अज्ञान भाव से, प्रमाद से अथवा उपेक्षा से यदि कार्य नष्ट हो जाता है तो पुरुष का समस्त प्रयास निष्फल हो जाता है क्योंकि पानी के निकल जाने पर पुल का बाँधना क्या है ? कुछ नहीं ॥७६ ॥

फिर भी हंसों ने कहा—हे तात ! चित्त को स्वस्थ कर जीवित रहने का कोई उपाय दिखलाइये। जैसा कि कहा है—

शरीर में धातुओं का बन्धन चित्त के अधीन है, चित्त के नष्ट हो जाने पर धातुयें नाश को प्राप्त हो जाती हैं। इसलिये चित्त की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करनी चाहिये क्योंकि स्वस्थ चित्त में ही बुद्धि का होना संभव है ॥७७ ॥

तदनन्तर वृद्ध हंस ने कहा—हे पुत्रो ! मृतक के समान पड़े रहो, नहीं तो वह शिकारी गला घोंट देगा। उन हंसों ने वैसा ही किया। प्रातःकाल वह शिकारी आया, पक्षियों के समूह को मरा जानकर निश्चिन्त हो उसने सब हंसों को नीचे गिरा दिया। तत्पश्चात् वृद्ध हंस ने कहा-हे पुत्रो ! सब लोग भाग जाओ यह सुनकर सब हंस उड़ गये। पश्चात् सभी ने कहा कि अहो ! वृद्ध के वचनोपदेश से ही हम लोग जीवित बचे हैं। जैसा कि कहा है-

बुद्धिमान् तथा गुणी मनुष्यों को वृद्ध के वचनों का सदा पालन करना चाहिए। देखो, वन में बँधे हुए हंस वृद्ध के वचनों से छूट गये ॥७८ ॥

कथा के अभिप्राय से यह सूचित होता है कि यद्यपि कार्यमूल से ही नष्ट हो गया तथापि राजा नहीं जानता है क्योंकि वह दुराग्रह रूपी ग्रह से ग्रसित है, उसी प्रकार जो मूर्ख पंचेन्द्रिय के विषयों में आकण्ठ डूबा है उस पुरुष के विषय में विद्वान् क्या करे ? क्योंकि मेघ काले पाषाणखण्ड को कोमल करने के लिए समर्थ नहीं होता है ॥७९ ॥

यह कथा कहकर यमदण्ड अपने घर चला गया।

इस प्रकार प्रथम दिन की कथा पूर्ण हुई।

द्वितीय दिन की कथा

यमदण्ड दूसरे दिन उसी प्रकार राजा के पास आया और राजा ने उससे पूछा—हे यमदण्ड ! तूने चोर को देखा ? यमदण्ड ने कहा-हे महाराज ! मैंने चोर नहीं देखा। राजा ने कहा—समय का उल्लंघन किसलिये किया ? उसने कहा—मार्ग में एक कुम्भकार ने कथा कही, उसे मैंने सुना इसी से समय का उल्लंघन हो गया।

राजा ने कहा वह कथा मेरे आगे कही जाने योग्य है, जिसके द्वारा तुम अपना भय भूल गये। यमदण्ड ने कहा—अच्छी बात है कहता हूँ—

इस नगर में एक पाल्हण नामका कुम्हार है जो अपने कार्य में अत्यन्त निपुण है। यह कुम्हार जन्म से ही नगर की निकटवर्ती मिट्टी की खान से मिट्टी लाकर नाना प्रकार के बर्तन बनाकर बेचता है, समय पाकर वह धनवान हो गया। पश्चात् उसने एक अच्छा भवन बनवा लिया। पुत्रादि सन्तति को विवाहित कर लिया। वह समस्त उत्तम भिक्षुओं को उत्तम भिक्षा देता है और याचकों के लिये भोजनादिक। क्रम से वह अपनी जाति के बीच बहुत बड़ा प्रधान हो गया।

एक समय गधी को सुसज्जित कर मिट्टी लेने के लिए मिट्टी की खान पर गया। वहाँ खान को खोदते समय उसके ऊपर खान का किनारा गिर पड़ा जिससे उसकी कमर भग्न (टूट) हो गई। पश्चात् उसने पढ़ा—

जिस खान से मैं भिक्षा और भोजनादिक देता था तथा जिससे अपने आपका पोषण करता था उस खान से मेरी कमर टूट गयी, शरण से ही भय हो गया-रक्षक ही भय उत्पन्न करने वाला हो गया ॥८०॥

इस प्रकार सूचित अभिप्राय को राजा नहीं जान सका। यमदण्ड यह कथा कहकर अपने घर चला गया। इस प्रकार दूसरा दिन व्यतीत हुआ।

तृतीय दिन की कथा

तीसरे दिन उसी प्रकार जब यमदण्ड राजा के पास आया तब उसने पूँछा—हे यमदण्ड ! तू ने चोर देखा ? उसने कहा—हे देव ! कहीं भी चोर नहीं दिखा । राजा ने कहा बहुत समय क्यों लगा ? उसने कहा-देव ! मार्ग में कथा कहने वाला कथा कह रहा था, उसे मैं सुनता रहा इसीलिए बहुत समय लग गया। राजा ने कहा-वह कथा मेरे आगे कही जाय। यमदण्ड ने कहा-तथास्तु, कहता हूँ सुनिये।

पाञ्चाल देश के वरशक्ति नगर में राजा सुधर्म रहता था। वह परम धार्मिक और जैन धर्म के अनुसार चलने वाला था। उसकी स्त्री का नाम जिनमति था। वह भी राजा के ही समान परम धार्मिक और जैनमत को धारण करने वाली थी। राजमन्त्री का नाम जयदेव था, जो चार्वाकमत का अनुयायी था। उसकी स्त्री का नाम विजया था। विजया भी अपने पति की तरह चार्वाक मत को मानने वाली थी।

इस प्रकार राजा बहुत भारी सुख से राज्य करता था। एक दिन जब राजा सभा में बैठा था तब उसके आगे किसी ने कहा-हे देव ! महाबल नाम का वैरी प्रजा को बहुत पीड़ित कर रहा है। वह सुन राजा ने क्रोध सहित कहा-यह तब तक कण्ठ

से गर्जना कर ले जब तक मैं नहीं जाता हूँ। राजा ने फिर कहा-मैं जिस किसी के ऊपर शस्त्र बन्धन नहीं करता हूँ अर्थात् सभी पर शस्त्र नहीं उठाता हूँ, किन्तु जो युद्ध में खड़ा होता है और अपने देश का काँटा होता है। वह अवश्य ही राजा के द्वारा निराकरण करने के योग्य होता है। जैसा कि कहा है-

जो शत्रु शस्त्र लेकर युद्ध में खड़ा हो अथवा जो अपने देश के लिये काँटा स्वरूप हो, राजा उसी पर शस्त्र चलाते हैं, दीन, कन्या पुत्र और अच्छे अभिप्राय वालों पर नहीं ॥८१॥

रणाग्रभाग में कीर्ति का संचय करने वाले योद्धा, हाथी-घोड़े और रथों पर सवार तथा निर्भय होकर सामने स्थित योद्धाओं को मारने के लिये ही सन्मुख जाकर प्रहार करते हैं अन्य लोगों पर नहीं ॥८२॥

इसके सिवाय दुष्टों का निग्रह और शिष्टों का पालन करना ही राजा का धर्म है, शिर मुंडाना और जटा धारण करना नहीं। ऐसा विचार कर राजा अपने शत्रु महाबल के ऊपर चढ़ाई करने चला, युद्ध में उसे जीतकर तथा उसका सर्व धन छीनकर बड़े हर्ष से अपने नगर को आ गया। जब राजा सेना के साथ नगर में प्रवेश कर रहा था मुख्य द्वार गिर गया। उसे गिरा देख तथा 'अपशकुन' हो गया ऐसा विचार कर राजा लौट आया और नगर के बाहर ही ठहर गया। मन्त्री ने शीघ्र ही प्रमुख द्वार तैयार करा दिया परन्तु दूसरे दिन भी प्रतोली प्रमुख द्वार गिर गया। इसी प्रकार तीसरे दिन भी गिर गया।

तदनन्तर बाहर ठहरे हुए राजा से पूछा-हे मन्त्री ! इस प्रकार प्रमुख द्वार क्यों गिरता है ? और स्थिर कैसे हो सकता है ? मन्त्री ने कहा-हे राजन् ! अपने हाथ से एक मनुष्य को मार कर उसके रक्त से यदि प्रधान द्वार को सींचा जाय तो स्थिर हो सकता है अन्य प्रकार से नहीं, यह कुलाचार्य का मत है।

यह सुन राजा बोला-जिस नगर में जीवघात किया जाता है उस नगर से मुझे प्रयोजन नहीं है। जहाँ मैं हूँ वहीं नगर है। उस सुवर्ण से क्या किया जाय जिससे कान कटने लग जाय ?

राजा ने फिर भी कहा-जो अपना हित चाहता है उसे हिंसा नहीं करना चाहिये। जैसा कि कहा है-

जो प्राणियों के घात से धर्म की इच्छा करता है वह अग्नि से कमल वन, सूर्यास्त से दिन, सर्प के मुख से अमृत, विवाद से धन्यवाद, अजीर्ण से नीरोगता और कालकूट विष से जीवित रहने की इच्छा करता है॥८३॥

धर्म का सर्वस्व सुनो और सुनकर उसे हृदय में धारण करो। धर्म का

सर्वस्व यही है कि जो काम अपने विरुद्ध हैं, अपने लिये अच्छे नहीं लगते हैं उन्हें दूसरों के प्रति भी न करें॥८४॥ लोग तो प्रवाह में बहते हैं अर्थात् देखा-देखी करते हैं परमार्थ का विचार करने वाले नहीं हैं। इस जगत् में साँप सामने तो मारा जाता है परन्तु गोबर का बनाया हुआ पूजा जाता है॥८५॥

अहिंसा परम धर्म है और प्राणियों का वध करना अधर्म है, इसलिये धर्म के इच्छुक मनुष्यों को प्राणियों पर दया करना चाहिये ॥८६॥

जो पृथिवी आदि से भूतों को अभय देता है । उसे भूतों से भय नहीं होता । यह ठीक ही है। क्योंकि जैसा दिया जाता है। वैसा ही फल होता है॥८७॥

जीवन, बल और आरोग्य की निरन्तर इच्छा करने वाले राजा को स्वयं हिंसा नहीं करना चाहिये और कोई हिंसा कर रहा है तो उसे मना करना चाहिये॥८८॥

और भी कहा है-एक मनुष्य सुमेरु पर्वत के बराबर सुवर्ण अथवा सम्पूर्ण पृथिवी दान में देता है और दूसरा एक जीव को जीवन देता है परन्तु फल की अपेक्षा दोनों में समानता नहीं होती अर्थात् जीवन दान का फल अधिक होता है॥८९॥

तदनन्तर राजा के ऐसे निश्चय का निर्णय कर मन्त्री ने समस्त नगरवासियों को बुला कर कहा-हे नगरवासियों ! सुनो, यदि ऐसा किया जाय तो प्रधान द्वार स्थिर हो सकता है अन्यथा नहीं। यदि मनुष्य का वध आदिक किया जाता है तो राजा आज्ञा नहीं देता है। वह कहता है कि जहाँ मैं हूँ वहीं नगर है। जीव-वध आदि को न मैं स्वयं करुँगा, न दूसरों से कराऊँगा और न अनुमोदन ही करुँगा। यह जानकर जो विचार आता है उसे कहो।

पश्चात् महाजनों ने आकर कहा-हे स्वामिन् ! हम लोग सब कुछ कर सकते हैं आप चुप रहिये । राजा ने कहा-जब प्रजा पाप करती है तब उसका छटवाँ भाग मेरा होता है और जब पुण्य करती है तब उसका भी छठवाँ भाग मेरा होता है।

जैसा कि कहा है--

देश का किया पाप राजा को भी लगता है, राजा का किया पाप पुरोहित को भी लगता है, स्त्री का किया पाप पति को भी लगता है और शिष्य का किया पाप गुरु को भी लगता है॥९०॥

जिस प्रकार सदाचार राजा, अच्छा कार्य करने वाले मनुष्यों के पुण्य के छठवें भाग का हिस्सेदार होता है उसी प्रकार दुराचारी राजा खोटा कार्य करने वाले के छठवें भाग का हिस्सेदार होता है॥९१॥

महाजनों ने पुनः कहा-पाप का पूरा हिस्सा हम लोगों का और पुण्य का पूरा हिस्सा आपका होगा इसलिए आप चुप रहिये। राजा ने कहा- 'तथास्तु' ऐसा हो। तदनन्तर महाजनों ने धन की उगाहनी की, उस धन से सुवर्ण का एक मनुष्य बनवाया और उसे नाना प्रकार के रत्नों से अलंकृत किया। पश्चात् उस पुरुष को गाड़ी पर चढ़ा कर नगर में घोषणा दिलवायी यदि कोई अपना पुत्र इस प्रकार देता है कि माता अपने हाथ से विष देवे और पिता गला मोड़े तो उन माता पिता के लिये सुवर्णमय पुरुष और एक करोड़ रूपये दिये जावेंगे। उसी नगर में करुणा रहित, महादरिद्री वरदत्त नाम का ब्राह्मण रहता था, उसके सात पुत्र थे। उस वरदत्त की स्त्री का नाम निष्करुणा था। घोषणा के नगाड़े को सुनकर उस ब्राह्मण ने अपनी स्त्री से पूँछा-हे प्रिये ! इन्द्रदत्त नामक छोटे पुत्र को देकर ये द्रव्य ले लिया जाय। द्रव्य की प्राप्ति होने पर सब गुण अपने हो जावेंगे । जैसा कि कहा है

जिसके पास धन है वही मनुष्य कुलीन है, वही पण्डित है, वही शास्त्रज्ञ और गुणज्ञ है, वही वक्ता है तथा वही दर्शनीय-सुन्दर है, क्योंकि समस्त गुण धन का आश्रय करते हैं॥९२॥

हे भद्रे ! धन की महिमा देखो, जैसा कि कहा है-

धन का इच्छुक यह मनुष्य श्मशान की भी सेवा करता है और महान् अनर्थों को करता है जिससेदुर्गति को प्राप्त होता है॥९३॥

जो मनुष्य दुर्गम अटवी में घूमते हैं और भयंकर अन्य देशों को जाते हैं वह भी धन की महिमा है।

नीति से रहित नेता, विनय से रहित शिष्य, शील से रहित वेषधारी-परिव्राजक, शान्ति से रहित साधु, जीव से रहित शरीर, पुण्य से रहित गृहस्थ कुछ भी नहीं है॥९४॥

हम दोनों की कुशल रहने पर और भी बहुत पुत्र हो जावेंगे। उस निष्करुणा ब्राह्मणी ने तथास्तु ऐसा कह दिया। तदनन्तर वरदत्त ने घोषणा को धारण कर कहा-इस द्रव्य को लेकर मैं अपना पुत्र देता हूँ। महाजनों ने कहा-आप दीजिये परन्तु यदि माता अपने हाथ से पुत्र को विष देवे ओर पिता अपने हाथ से पुत्र का गला मोड़े तो यह धन और समस्त वस्तुऐं दी जावेंगी, अन्यथा नहीं। वरदत्त ने कहा- 'तथास्तु' सब स्वीकार है।

पिता की इस चेष्टा को सुनकर इन्द्रदत्त ने अपने मन में विचार किया-अहो ! संसार में स्वार्थ ही है, कोई किसी का प्यारा नहीं है।

जिस प्रकार पक्षी सूखे वृक्ष को छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं उसी

प्रकार सेवक धन रहित, कुलीन और उत्कृष्ट राजा को भी छोड़कर अन्यत्र चले जाते हैं॥९५॥

पक्षी फलरहित वृक्ष को छोड़ देते हैं, सारस सूख सरोवर को छोड़ देते हैं, भौंरे गन्ध-रहित फूल को छोड़ देते हैं, मृग जले हुए वन को छोड़ देते हैं,वेश्याएँ निर्धन पुरुष को छोड़ देती हैं और सेवक दुष्ट विपत्तिग्रस्त राजा को छोड़ देते हैं। ठीक ही है सभी लोग अपने अपने कार्य के वश ही प्रीति दिखाते हैं, परमार्थ से पृथ्वी पर कौन किसे प्रिय है ?॥९६॥

अहो धन का माहात्म्य देखो,धन के निमित्त न करने योग्य कार्य भी किया जाता है।जैसा कि कहा है-

जो अपूज्य भी पूजा जाता है, अगम्य गम्य हो जाता है असेव्य का भी सेवन किया जाता है और अवन्द्य की भी वन्दना की जाती है वह धन का ही प्रभाव है॥९७॥

भूखा मनुष्य कौनसा पाप नहीं करता ? दरिद्र मनुष्य कौन सा पाप नहीं करता ? दरिद्र मनुष्य दया रहित होते हैं, हे भद्रे ! प्रियदर्शन की कथा प्रसिद्ध है कि उसके निर्धन होने पर गङ्ग दत्त फिर कुए को नहीं जाता है॥९८॥

जिस प्रकार कुत्ते के पिल्ले को जब तक खिलाते पिलाते रहते हैं तब तक वह प्रिय समझ कर पीछे लगा रहता है, उसी प्रकार जब तक सब मनुष्यों को दान आदि देकर अपने अनुकूल रखा जाता है तभी तक वे प्रिय समझकर पीछे लगते हैं, दान आदि के स्रोत बन्द होने पर सब साथ छोड़ देते हैं॥९९॥

तदनन्तर द्रव्य लेकर वरदत्त ने अपना पुत्र महाजनों को सौंप दिया।

तदनन्तर जो आभूषणों से सहित था तथा माता पिता आदि लोगों से घिरा हुआ था, ऐसे हँसते हुए, प्रधान द्वार के सम्मुख आये इन्द्रदत्त को देखकर राजा ने कहा-रे बालक ! किसलिये हँस रहा है ? क्या मरने से डरता नहीं है। उसने कहा-हे देव ! जब तक भय आता नहीं है तब तक डरना चाहिये परन्तु आ जाने पर सहन करना चाहिये। जैसा कि कहा है-

भय से तब तक डरना चाहिये जब तक वह आया नहीं है परन्तु भय को आया देखकर शंका रहित हो प्रहार करना चाहिये॥१००॥

एक बात यह भी है—

माता यदि विष देती है, पिता पुत्र को बेचता है और राजा सर्वस्व हरण

करता है तो वहाँ दु:ख की क्या बात है ? ॥१०१॥

इस स्थिति में कि जब माता पुत्र के लिये विष दे रही हो, क्रूर पिता लोभ से गला मोड़ रहा हो, महाजन धन देकर खरीद रहा हो और राजा प्रेरणा कर रहा हो तब हे नाथ ! मैं किसके आगे अपना दु:ख कहूँ ? ॥१०२-१०३॥

जो मृत्यु के द्वारा स्वीकृत किया जा चुका है उसकी भी मुक्ति धैर्य के बिना नहीं हो सकती, इसलिये हे राजन् ! इस अवसर पर मैं धैर्य का आलम्बन लेकर हँस रहा हूँ॥१०४॥

इन्द्रदत्त ने पुन: कहा - हे राजन् ! माता के द्वारा संताप को प्राप्त हुआ बालक पिता की शरण जाता है, पिता के द्वारा संताप को प्राप्त हुआ माता की शरण जाता है, दोनों के द्वारा संताप को प्राप्त हुआ राजा की शरण को जाता है और राजा के द्वारा संताप को प्राप्त हुआ महाजनों की शरण को जाता है परन्तु जहाँ माता विष देती है, पिता गला मोड़ता है, महाजन धन देकर ग्रहण करता है और राजा प्रेरक-प्रेरणा करने वाला होता है वहाँ किसके आगे कहा जावें ? जैसा कि कहा है-

माता और पिता के द्वारा पुत्र दिया गया हो, राजा शस्त्र से घात करने वाला हो और देवता बलि की इच्छा करता हो, वहाँ रोना-चीखना क्या कर सकता है अर्थात् कुछ नहीं ॥१०५॥ इसीलिये धीरता से मरण हो।

यह वचन सुनकर राजा ने कहा-इस प्रतोली- प्रधान द्वार से इस नगर से भी मुझे कोई प्रयोजन नहीं है। जहाँ मैं हूँ वहीं नगर है,.....यह मेरा कहना है, मैं नवीन नगर बसा लूँगा। इस प्रकार धैर्य सहित राजा और बालक के साहस को देखकर नगर देवता ने प्रतोली का निर्माण कर दिया, पञ्चाश्चर्यों से बालक की पूजा की और दोनों के ऊपर पुष्प वृष्टि की। कहा भी है-

रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, देव दुन्दुभि, मन्द, सुगन्धित और शीतल के भेद से तीन प्रकार की वायु और साधुवाद-धन्य धन्य शब्द की ध्वनि ये पञ्चाश्चर्य कहलाते हैं॥१०६॥ इस संसार में उद्योगी मनुष्यों के लिये कोई कार्य कठिन नहीं है।

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, और पराक्रम ये छह जिसके पास हैं, देव भी उससे शंकित रहते हैं-भय खाते हैं॥१०७॥

इस प्रकार सूचित किये हुए अभिप्राय को राजा नहीं जानता है। यह कथा कह कर यमदण्ड अपने घर चला गया। इस प्रकार तृतीय दिन व्यतीत हुआ।

चतुर्थ दिन की कथा

चौथे दिन सभा में बैठे हुए राजा ने उसी प्रकार यमदण्ड से पूछा- रे यमदण्ड तूने चोर देखा। उसने कहा-मैंने तो कहीं नहीं देखा। राजा ने फिर कहा इतना समय क्यों लगा? यमदण्ड ने कहा-राजन् ! गाँव के बाहर मार्ग में एक पथिक हरिणी की कथा कह रहा था। वह कथा मैंने सावधान होकर सुनी। इसलिये बहुत समय लग गया है। राजा ने कहा-वह कथा मेरे निरूपण करने के योग्य है। यमदण्ड ने कहा-अच्छी बात है, सुनिये।

चारों दिशाओं में विद्यमान तालाब से युक्त और अनेक पत्तों वाले सीधे वृक्षों के समूह से विस्तृत एक उत्तम वन में तालाब के तट पर कोई हरिणी रहती थी। वह बच्चों के साथ वन की अकृत्रिम भूमि में तृणादि का भक्षण कर तालाबों में पानी पीकर सुख से समय व्यतीत करती थी। उस वन के निकटवर्ती नगर के राजा अरिमर्दन के बहुत पुत्र थे।किसी शिकारी ने एक मृग का बच्चा पकड़कर एक कुमार के लिये दिया। उसे देख अन्य कुमार भी मृग के बच्चों के लिये इच्छुक हो गये।

पश्चात् उन्होंने एकत्रित होकर राजा के आगे कहा-हे स्वामिन् ! हम लोगों को मृग के बच्चे दीजिये। तदनन्तर राजा ने शिकारियों को बुलाकर पूछा-हे शिकारियों ! कहो किस वन में मृगों के बहुत बच्चे मिलते हैं ? किसी शिकारी ने कहा-हे देव ! जीर्णोद्यान में बहुत मिलते हैं। यह सुनकर राजा स्वयं ही शिकारी का वेष रखकर वहाँ गया। उस वन को विषम देख कर उसने मृगों के बच्चे पकड़ने के लिए बुद्धि की। चारों दिशाओं में वर्तमान तालाबों का बाँध फोड़कर जल इकट्ठा कर लिया, सब ओर जाल बिछवा दिया और जीर्णशीर्ण पत्तों में आग लगवा दी।

पश्चात् राजा ने कहा-हे शिकारियो ! वन में इस तरह प्रवेश करना चाहिये कि जिससे मृगों के बहुत से बच्चे जालों में फँस जावें और उन फँसे हुए बच्चों को क्रीडा के लिये पकड़ लिया जावे। शिकारियों ने वैसा ही किया। यह देख एक विद्वान् ने कहा—

समस्त जल चारों ओर फैला दिया है, समस्त वन जालों से व्याप्त है और राजा स्वयं शिकारी बना हुआ है, तब उस वन में रहने वालों का निवास कैसे हो सकता है ? ॥१०८॥

और भी कहा है—

दिशाएँ रस्सियों से विस्तृत हैं, पानी विष से सहित है, पृथ्वी जालों से आच्छादित है, वन का मध्य भाग अग्नि से युक्त है और शिकारी धनुष लेकर

पीछे-पीछे चल रहे हैं अत: बच्चों से सहित हरिणी किस देश का आश्रय करे-कहाँ जावे ? ॥१०९॥

इस प्रकार सूचित अभिप्राय को राजा नहीं जानता है। यह कथा कहकर यमदण्ड अपने घर चला गया।

इस प्रकार चतुर्थ दिन की कथा पूर्ण हुई।

पञ्चमदिन की कथा

पाँचवें दिन सभा में बैठे हुए राजा ने उसी प्रकार पूछा-रे यमदण्ड ! चोर दिखा ? उसने कहा-हे देव ? मुझे कहीं नहीं दिखा। राजा ने कहा-फिर इतना अधिक काल क्यों लगा ? उसने कहा-ग्राम के बाहर एक कथाकार कथा कह रहा था, मैं उसे सुनने लगा, अतएव बहुत समय लग गया। राजा ने कहा वह कथा मेरे आगे कही जाय। उसने कहा 'तथास्तु'। कहता हूँ, सुनो-

नेपाल देश में पाटली नाम की नगरी है, उसके राजा का नाम वसुन्धर और रानी का नाम वसुमति था। वह राजा कवित्व के विषय में-कविता करने में बहुत बलिष्ठ था। राजमन्त्री का नाम भारतीभूषण था और उसकी स्त्री का नाम देवकी था। वह मन्त्री आशु कवि होने से लोगों के बीच बहुत प्रसिद्ध था। एक दिन सभा के बीच चलने वाली विद्वद्गोष्ठी में मन्त्री ने राजा की कविता को बहुत दूषित कर दिया-उनमें अनेक दोष निकालने लगा, जिससे राजा ने कुपित होकर मन्त्री को बँधवाकर रात के समय गंगा के प्रवाह में गिरवा दिया, परन्तु पूर्व पुण्य के उदय से बालुका के ऊपर पड़ा। जैसा कि कहा है-

वन में, रण में, शत्रु, जल और अग्नि के मध्य में, महासागर में, पर्वत के शिखर पर सोये हुए प्रमत्त अथवा विषम रूप में स्थित मनुष्य की उसके पूर्व कृत पुण्य ही रक्षा करते हैं॥११०॥

जिस मनुष्य के पास पूर्व पर्याय में किया हुआ विशाल पुण्य होता है उसके लिये भंयकर वन प्रधान नगर बन जाता हैं, सभी मनुष्य उसके लिये सज्जनता को प्राप्त होते हैं अथवा सभी लोग उसके स्वजन-आत्मीय जन हो जाते हैं और समस्त पृथिवी उसके लिये उत्तम निधि तथा रत्नों से परिपूर्ण हो जाती है॥१११॥

बालुका के ऊपर स्थित मन्त्री ने विचार किया। 'कवि कवि को सहन नहीं करता है, यह जो लोक में प्रसिद्धि है वह सत्य है। क्योंकि-

गधा, बैल, घोड़ा, जुआरी, पण्डित और बालक में एक-एक को सहन नहीं करते और एक, एक के बिना रहते भी नहीं हैं॥११२॥

जैसा कि कहा है—

दुष्ट मनुष्य शिष्ट मनुष्य से, कामी व्रती से, चोर स्वभावतः जागने वाले से, पापी धर्मात्मा से, भीरु शूरवीर से और अकवि कवि से क्रोध करता है॥११३॥

फिर भी कहा है-

रसोइया रसोइया को, वैद्य वैद्य को, ब्राह्मण ब्राह्मण को, नट नट को और राजा राजा को देखकर कुत्ते के समान घुरघुराता है॥११४॥

कामी मनुष्य ब्रह्मचारी से, उस प्रकार अत्यधिक कोप करता है जिस प्रकार कि रात्रि में घूमने वाला चोर जगाने वाले मनुष्य से कोप करता है॥११५॥

इतने में नदी का पूर आ गया। पानी में उतराते हुये अपने आप को देखकर मन्त्री ने एक श्लोक कहा! जैसे-

जिस जल के द्वारा बीज उत्पन्न होते हैं और जिस जल से वृक्ष उत्पन्न होते हैं उस जल के बीच मैं मरूँगा। अहो ! शरण देने वाले से भय उत्पन्न हो गया॥११६॥

फिर भी नीचे की ओर बहते हुए जल को देखकर सज्जनों में श्रेष्ठ मन्त्री ने अन्योक्ति के रूप में उच्च स्वर से एक श्लोक पढ़ा, जैसे-

हे जल ! तुम में शीतलता नाम का प्रसिद्ध गुण है, स्वाभाविक स्वच्छता है, तुम्हारी पवित्रता को क्या कहूँ क्योंकि जिसके सङ्ग से दूसरे पदार्थ शुचिता को प्राप्त होते हैं, अथवा इससे तुम्हारी अधिक स्तुति का स्थान और क्या हो सकता है कि तुम प्राणियों के जीवन हो-जीवन की रक्षा करने वाले हो फिर भी तुम नीच मार्ग से जाते हो तो तुम्हें रोकने के लिये कौन समर्थ है ? यहाँ मन्त्री ने पानी के व्याज से राजा से कहा है कि आप स्वयं उत्कृष्ट होकर भी नीचे मार्ग से चल रहे हैं, असहनशीलता के कारण मन्त्री का घात कर रहे हैं तो तुम्हें कौन रोक सकता है॥११७॥

राजा के छिपे हुये गुप्तचर ने यह श्लोक सुना और उसने शीघ्र ही जाकर राजा के आगे कह दिया। तदनन्तर राजा ने मन में विचार किया-अहो ! मैंने बुरा किया जो मन्त्री को तिरस्कृत किया। सत्पुरुष को अपने आश्रित जनों के गुण और दोषों की चिन्ता नहीं करना चाहिये।

जैसा कि कहा है-

चन्द्रमा क्षीण हो जाता है स्वभाव से वक्र शरीर करने वाला है जड़ात्मा-मूर्ख पक्ष में जल रूप-शीतल है, दोषाकर-दोषों की खान अथवा रात्रि को करने वाला है और मित्र की विपत्ति के समय पक्ष में सूर्यस्तकाल में चमकता है फिर भी शंकर

जी उसे अपने मस्तक से धारण करते हैं सो ठीक ही है क्योंकि आश्रित मनुष्यों में महापुरुषों को गुण और दोष का विचार नहीं होता॥११८॥

ऐसा विचार कर राजा ने उस मन्त्री को शीघ्र ही पूर के जल से निकलवा लिया, उसकी पूजा की तथा मन्त्री के पद पर रख लिया।

इस प्रकार सूचित अभिप्राय को राजा नहीं समझ पाया। यह कथा कहकर यमदण्ड कोतवाल अपने घर चला गया।

इस प्रकार पंचम दिन की कथा पूर्ण हुई।

छठवें दिन की कथा

छठवें दिन सभा में स्थित राजा ने पूछा-रे यमदण्ड ! चोर दिखा ? उसने कहा-हे देव ! कहीं भी नहीं दिखा। राजा ने कहा—तो इतना अधिक समय किसलिये लगा ? उसने कहा—बाजार के बीच किसी वनपाल ने कथा कही थी, वह मैंने सुनी थी, इसलिये बहुत समय लग गया। राजा ने कहा-वह कथा मेरे आगे कही जानी चाहिये। यमदण्ड ने कहा- तथास्तु—ऐसा ही हो, पूज्यवर सावधान होकर वह कथा सुनिये। कथा इस प्रकार है—

कुरुजाङ्गल देश के नागपुर नगर में राजा सुभद्र रहता था, उसकी रानी का नाम सुभद्रा था। इस प्रकार राजा सुख से राज्य करता था। उस राजा के बहुत से क्रीड़ा वानर थे। वे राजमान्य वानर उपद्रव भी करते थे परन्तु राजा के भय से कोई भी कुछ नहीं कहता था।वे सब वानर इस नगर के बीच निर्भय होकर विचरते थे।

एक समय उस राजा ने क्रीड़ा के लिये नवीन बगीचा बनबाया। वह बगीचा अपूर्व बन गया, क्योंकि—उसमें ऐसे वन खण्ड थे कि जिनमें नाना प्रकार के परिपाक से प्रकटित केलों के अनेक भेद, अनेक आम और अनेक प्रकार के इक्षुओं की कक्षायें (कतारें) थी, निकलते हुए श्रेष्ठ निर्यास समूह के रस की नदियों के बीच हंस क्रीड़ा कर रहे थे, हंस और चक्रवाक पक्षी जिसमें क्रीड़ाकर रहे थे, सुगन्धि से व्याकुल भ्रमरियों के समूह जिनमें इधर-उधर घूम रहे थे, जिनमें कामदेव की क्रीड़ा के मनोहर प्रदेश थे और जो पक्षियों की किलिकिलि ध्वनि से सुन्दर थे॥११९॥

आम, जामुन, नीबू, कदम्ब, देवदास, पीपल, ताल, तमाल और हिन्ताल के मुख्य वृक्षों से सहित उस वन में अन्य पर्वत अथवा वन से आकर ताड़ वृक्ष की मदिरा पीकर उपद्रव करते थे। वे उन्मत्त वानर वनपालों से नहीं डरते थे।

जैसा कि कहा है—

ऐसा वानर हो कि जिसने अत्यधिक मदिरा पी ली है, ऊपर से जिसे बिच्छु ने काटा है और उतने पर भी जिसे पिशाच-भूत लग रहा है तो उसकी चेष्टा का क्या कहना है ? ॥१२०॥

वनपाल ने महावन में वानरों का उपद्रव देख राजा के आगे कहा-हे राजन् ! वानरों ने महावन को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। वनपाल के यह वचन सुन राजा ने वन की रक्षा के लिये अपने भवन में रहने वाले वृद्ध क्रीड़ा वानर भेज दिये। वे वानर वहाँ जाकर अपनी जाति के वानरों से मिल गये और मदिरा के पान से विह्वल होकर उपद्रव करने लगे। वनपाल ने मन में कहा-कार्य, जड़ से ही नष्ट हो गया है क्योंकि वन की रक्षा में वानर नियुक्त किये गये हैं। वनपाल ने अपने मन में यह भी कहा कि विवेक और नेत्र के बिना यदि अन्यथा कार्य रूपी अन्धकार में यदि कोई गर्त में पड़ता है तो इसमें क्या अपराध है ? वन की अवस्था देख वनपाल ने यह पद्य पढ़ा-

मनुष्य का एक निर्मल चक्षु तो सहज विवेक है और दूसरा जन्म से ही उत्पन्न नेत्र है। इन दोनों नेत्रों से युक्त मनुष्य का ही गमन होता है। जिस पुरुष के ये दोनों नेत्र नहीं हैं उसके कुमार्ग में चलने में निश्चय से क्या अपराध है ? कुछ भी नहीं॥१२१॥

इस प्रकार सूचित अभिप्राय को राजा नहीं जान सका। यह कहकर यमदण्ड अपने घर चला गया।

इस प्रकार षष्ठम दिन की कथा हुई।

सप्तम दिन की कथा

सातवें दिन सभा में बैठे हुए राजा ने उसी प्रकार पूछा-रे यमदण्ड ! चोर दिखा? उसने कहा-देव ! कहीं भी नहीं दिखा। राजा ने कहा-फिर इतना अधिक काल कैसे लगा ? उसने कहा-कोई वनपाल चौराहे पर कथा कह रहा था, मैं उसे सुनता रहा, इसलिये समय लग गया। राजा ने कहा-वह कथा मेरे आगे कही जाने योग्य है। उसने कहा-ठीक है सुनिये अवन्ति देश में उज्जयिनी नाम की नगरी है। वहाँ सुभद्र नामक सेठ रहता था। उसकी दो स्त्रियाँ थीं। एक समय वह अपनी माता के हाथ में दोनों स्त्रियों को सौंप कर लेन-देन के लिये अच्छे मुहूर्त में परिवार के साथ नगरी के बाहर चला गया। इधर उसकी दुश्चरित्रा माता किसी जार के साथ घर के बगीचे के बीच स्थित थी। रात्रि में कार्यवश सुभद्र अपने घर आया। आकर उसने कहा—हे माता ! किवाड़ खोलो, पुत्र के वचन सुनकर किवाड़ खोलकर

दोनों भागे और भागकर डरते हुए दोनों घर के कोने में घुस गये। घर के भीतर प्रवेश करते हुए सुभद्र ने अपनी माता के वस्त्र एरण्ड के वृक्ष पर देख लिया।

तदनन्तर उसने मन में कहा-अहो ! यह सत्तर वर्ष की है तो भी काम सेवन को नहीं छोड़ती है। अहो! काम की महिमा बड़ी विचित्र है क्योंकि वह मरे हुए को भी मारता है। जैसा कि कहा है। "एक ऐसा कुत्ता जो दुबला है, लंगड़ा है, कानों से रहित है, पूंछ से विफल है, घावों से युक्त है, जिसके पीप निकल रही है, जिसका शरीर सैकड़ों कीड़ों से युक्त है, जो भूख से कृश है, पिटा हुआ है, जिसके गले में फूटे घड़े का घाँघर लटक रहा है कुत्ती के पीछे लग रहा है, अत: काम मरे हुए को भी मार रहा है॥१२२॥

महात्मा कामदेव का धनुर्वेद अपूर्व ही है क्योंकि शरीर को तो अक्षत-अखण्ड रहता है परन्तु भीतर स्थित मन को भेद देता है-खण्डित कर देता है॥१२३॥

अहो ! स्त्री का चरित्र किसी के द्वारा नहीं जाना जा सकता यह जो लोकोक्ति है वह सत्य है। कहा भी है--

ग्रह का चरित्र, देव का चरित्र, तारा का चरित्र और राहु का चरित्र इस प्रकार सब के चरित्र को लोग जानते हैं परन्तु स्त्री के चरित्र को नहीं जानते॥१२४॥

स्त्री बाह्यवृत्ति-बाहरी चेष्टा से अपनी सज्जनता प्रकट करती है। जैसा कि कहा है--

चक्रवाक पक्षी के समान वृत्ति वाला जिसका जीवन है अर्थात् जो पृथक् होने पर दु:खी होता है ऐसे वल्लभ—प्रिय पति को, पुत्र को और गुरु को भी दुष्ट स्त्री क्रुद्ध होने पर मृत्यु को प्राप्त करा देती है फिर अन्य पुरुषों की बात ही क्या है॥१२५॥

स्त्री, किसी अन्य पुरुष का आलिङ्गन करती है, वचन से किसी अन्य को रमण कराती है-बहलाती है, किसी अन्य को देखती है, किसी अन्य के कारण रोती है, किसी अन्य को शपथों द्वारा अभिप्राय प्रकट करती है, किसी को वरती है, किसी अन्य के साथ शयन करती है, शयन को प्राप्त होकर भी किसी का चिन्तवन करती है, यह वामा नाम से प्रसिद्ध है, तथा जगत् में बहुत प्रिय है, न जाने यह स्त्री किस धृष्ट के द्वारा बनाई गयी है॥१२६॥

स्त्री का मुख यद्यपि कफ का घर है तो भी चन्द्रमा के साथ इसकी तुलना करते हैं, स्तन मांस की गांठ है तो भी इन्हें सुवर्णकलश की उपमा दी जाती है, जघन भाग झरते हुए मूत्र से गीला है फिर भी उसे गजराज के गण्डस्थल के साथ स्पर्द्धा

करने वाला कहा जाता है और रूप बार-बार निन्दनीय है फिर भी कवि लोग उसे बढ़ावा देते हैं॥१२७॥

जबकि यह वृद्धावस्था में भी ऐसा करती है तब मेरी जवान स्त्रियों की बात ही क्या है। जैसा कि कहा है-

जहाँ वायु के द्वारा साठ वर्ष के हाथी भी उड़ा दिये जाते हैं, वहाँ गायों की क्या गिनती है और खरगोशों की क्या कथा है ?

इस प्रकार मन में विचार कर दोनों स्त्रियों को शिक्षा देता है।

हृदय को हरण करने वाली मेरी बात सुनों ! तुम दोनों वंश चलाने वाले पुत्र को देने वाली दिखती हो। यथार्थ कहता हूँ कहिये तुम्हारे ये पुत्र-पुत्री हैं ही नहीं। क्योंकि जैसे जड़ नष्ट होने से लता की जैसी दशा होती है। अर्थात् लता दूषित हो सूख जाती है। उसी प्रकार तुम अच्छी तरह सुनकर कहो। क्योंकि जब अम्मा के अधोवस्त्र एरण्ड के नीचे पड़े मिले हैं। अर्थात् जहाँ तुम्हारी बूढ़ी सास दूषित हो वहाँ जवान बहुयें सुरक्षित कैसे रह सकतीं हैं। ऐसी शंका मन में कर सुभद्र सेठ ने अपनी पत्नियों से कहा।

इस प्रकार के सूचित अभिप्राय को राजा नहीं जानता है क्योंकि वह दुराग्रह से ग्रस्त तथा निर्विवेक था। जिसके पास विवेक रूपी निर्मल चक्षु नहीं हैं उसका अन्याय मार्ग रूप अन्धकार में यदि पतन होता है तो उसका क्या अपराध है ?

यह कथा कहकर यमदण्ड अपने घर चला गया।

इस प्रकार सप्तम दिन की कथा पूर्ण हुई।

अष्टम दिन की वार्ता

आठवें दिन सभा में बैठे हुए तथा क्रोध रूपी अग्नि से दैदीप्यमान राजा ने यमदण्ड से पूछा-रे यमदण्ड ! चोर देखा ? उसने कहा-हे देव ! कहीं भी नहीं दिखा। तब क्रोध से युक्त राजा ने सब महाजनों को बुलाकर कहा-हे महाजनों ! मेरा दोष नहीं है। यह धूर्त सात दिनों में कथाएं कहकर मुझे धोखा देता रहा है। अब यदि चोर और चुराई वस्तुओं को नहीं देगा तो मैं इसके सौ टुकड़े कर दिशा रूपी स्त्रियों को निश्चित ही बलि प्रदान कर दूँगा। राजा के इस वचन को सुनकर महाजनों ने यमदण्ड से पूछा-भो यमदण्ड ! तुमने चोर, उसके द्वारा चुराई हुई वस्तुएं अथवा चोर का अङ्ग देखा है। तब यमदण्ड ने कहा-लीजिये यह कहकर उसने यज्ञोपवीत, पादुका और मुद्रिका आदि को लाकर सभा के आगे रखते हुए कहा-

हे न्याय के जानने वाले महाजनों ! यदि चोर का कोई अङ्ग मिल जावे तो

चोर को क्या दण्ड दिया जावेगा ? राजकुमारादि सभासदों ने कहा—शूलारोपण अथवा देश निकाला किया जावेगा। यमदण्ड ने कहा—इस विषय में दृढता है या नहीं ? महाजनों ने कहा—यदि राजा भी चोर होगा तो हम लोग उस को भी दण्डित करेंगे, दूसरे की बात ही क्या है ? इस विषय में हम लोगों की शपथ ही है ! इस प्रकार सभासदों का निश्चय जानकर यमदण्ड ने कहा-

हे न्याय के जानने वाले महाजनों ! यह वस्तु हैं और ये चोर हैं। अब जैसा आप लोगों के मन में रुचे वह करो। ऐसा कहकर यमदण्ड ने एक पद्य कहा—जैसे-

जहाँ मन्त्री और पुरोहित से सहित राजा ही चोर है वहाँ रहने वाले सब लोगों को वन में चले जाना चाहिये क्योंकि शरण से ही भय उत्पन्न हो गया है॥१३१॥

यमदण्ड ने फिर से कहा कि यदि आप लोग विचार किये बिना राजा को नहीं छोड़ते हैं तो आप लोग पुण्य से वञ्चित होंगे। यह सब को जान लेना चाहिये। जैसा कि कहा—

शत्रु में मिले हुए मित्र को, व्यभिचारिणी स्त्री को, कुल को नष्ट करने वाले पुत्र को, राग सहित देव को, **विषय सेवन करने वाले गुरु को** और दया से रहित धर्म को जो प्रमोह वश नहीं छोड़ता है वह कल्याण के द्वारा छोड़ दिया जाता है॥१३२॥

तत्पश्चात् महाजनों ने खड़ाउओं से 'राजा चोर है, ऐसा ज्ञात किया, मुद्रिका से 'मन्त्री चोर है' ऐसा ज्ञात किया और यज्ञोपवीत से 'पुरोहित चोर है' इस प्रकार जान लिया। तदनन्तर सबने एक साथ विचार कर राजा को पदच्युत कर उसके पुत्र को राज्य पद पर बैठाया, मन्त्री को निकाल कर उसके स्थान पर मन्त्री पुत्र को मन्त्री पद दिया और पुरोहित को हटाकर उसके पद पर पुरोहित के पुत्र को स्थापित किया। जब तीनों नगर से निकाले जा रहे थे तब लोगों ने कहा—'अहो विनाश के समय शरीर में रहने वाली बुद्धि भी चली जाती है। यह जो लोकोक्ति है वह सत्य है। जैसा कि कहा गया है—

सोने का मृग नहीं होता है' ऐसा रामचन्द्रजी जानते थे, राजा नहुष ने ब्राह्मणों को यान में जुताया, अर्जुन ने ब्राह्मण, जमदग्नि ने गाय और बछड़े का हरण किया और धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने चार भाइयों तथा द्रोपदी रानी को जुए में दे दिया सो ठीक ही है क्योंकि प्रायः विनाश का अवसर आने पर सत्पुरुष बुद्धि के द्वारा छोड़ दिये जाते हैं॥१३३॥

और भी कहा है—

यद्यपि रावण के कपाल में एक सौ आठ प्रकार की बुद्धि निवास करतीं थीं तथापि लंका के विनाश काल में एक भी बुद्धि काम नहीं आयी॥१३४॥

तदनन्तर नगर से निकलते समय राजा ने कहा—अहो ! मैंने विचार किया था कि इस उपाय से यमदण्ड को मारकर सुख से राज्य किया जायेगा परन्तु कर्म. का यह विपाक बीच में आ जायेगा, यह कौन जानता था ?

जैसा कि कहा है—

यह जल का अद्वितीय स्थान है तथा रत्नों की खान है ऐसा मानकर प्यास से चञ्चल चित्त वाले हम लोगों ने इस जलनिधि समुद्र का आश्रय लिया था। इसके पास आये थे परन्तु यह कौन जानता था कि जिसमें मगरमच्छ छटपटा रहे हैं ऐसे इस समुद्र को अगस्तय ऋषि अपनी चुल्लु रूपी कोटर में रखकर पी जावेगें॥१३५॥

यह सब वृत्तान्त सुबुद्धि मन्त्री ने राजा उदितोदय से कहा और अन्त में उसका सारांश प्रकट करते हुए कहा—इसलिये हे देव ! किसी के साथ विरोध नहीं करना चाहिए, क्योंकि विरोध होने पर अपना ही नाश ही होता है अन्य कुछ नहीं। जैसा कि कहा है—

जिस किसी का भी पराभव नहीं करना चाहिए क्योंकि एक टिड्डी ने समुद्र को व्याकुल कर दिया॥१३६॥

यह सब कथा सुन कर उदितोदय राजा ने कहा-हे सुबुद्धे ! नगर से निकलते समय राजा ने अपने मन्त्री और पुरोहित से कहा होगा-अहो ! मैं इस उपाय से यमदण्ड को मार कर सुख से राज्य करूँगा। ऐसा उसने मन में विचार किया होगा परन्तु कर्म का यह विपाक बीच में ही आ जायेगा यह कौन जानता था।

जैसा कि कहा है—

ग्रीष्म ऋतु में तीव्र गर्मी से पीड़ित और बहुत भारी प्यास से बेचैन किया गया एक गजराज लबालब भरे हुए सरोवर को देखकर शीघ्र ही समीप आया परन्तु तट के निकट विद्यमान कीचड़ में ऐसा फँसा कि न जल ही मिल पाया और न तट ही। भाग्यवश दोनों ही नष्ट हो गये—प्राप्त होने से रह गये॥१३७॥ हे सुबुद्धि मन्त्री ! तुमने जो कहा है वह सभी सत्य है। वन के लिए जाने पर और उसकी विरुद्धता का ज्ञान होने पर मेरी भी सुयोधन जैसी अवस्था होगी, इसमें संशय नहीं है।

सुबुद्धि मन्त्री ने कहा—हे राजन् मन्त्री के अभाव में राज्य का नाश ही होता है। जैसा कि कहा है—

अहंकारी मनुष्य का यश, विषम मनुष्य की मित्रता, क्रियाहीन का कुल, अर्थ कमाने में संलङ्गन मनुष्य का धर्म, व्यसनी का विद्याफल, कंजूस का सुख, प्रमत्त मन्त्री से युक्त राजा का राज्य नष्ट हो जाता है॥१३८॥

भीतर से सुदृढ़ सीधे अच्छी तरह खड़े किये हुए और अच्छी तरह परीक्षित खम्भों के द्वारा जिस प्रकार महल धारण किया जाता है उसी प्रकार भीतर से बलिष्ठ, छल रहित अच्छे पद पर स्थित और अच्छी तरह परीक्षित मन्त्रियों के द्वारा राज्य धारण किया जाता है॥१३९॥

विषरस एक को मारता है और शस्त्र के द्वारा एक मारा जाता है परन्तु मन्त्री का विप्लव अकेला समस्त भाइयों तथा राष्ट्र से सहित राजा को नष्ट कर देता है॥१४०॥

राजा ने कहा—जो निरर्थक कार्य को रोकता है वास्तव में वह उत्कृष्ट मन्त्री है। जैसा कि कहा है—

जो चालू कार्य को आगे बढ़ाने के लिए, आगामी कार्य की उत्पत्ति के लिए और अनर्थक कार्यों का विघात करने के लिए मन्त्रणा करता है निश्चय से वही उत्कृष्ट मन्त्री है॥१४१॥ सुबुद्धि मन्त्री ने कहा—हे राजन् ! मन्त्री को स्वामी का हित करने वाला कार्य करना चाहिये। राजा ने कहा—लोक में तुम्हीं सत्पुरुष हो, क्योंकि तुम्हारे रहते हुए ही मेरी अपकीर्ति और दुर्गति नष्ट हुई है। जैसा कि कहा है—

सत्पुरुषों की सेवा वर्तमान तथा आगामिनी आपत्ति को उस प्रकार दूर करती है जिस प्रकार पिया गया गङ्गाजल तृषा और दुर्गति-दोनों को दूर करता है॥१४२॥

निर्गुण मनुष्यों की गोष्ठी से गुण नष्ट होता है, पाप पूर्ण दृष्टि से धन चला जाता है, तरुण स्त्री की संगति से तप नष्ट हो जाता है और नीच मनुष्यों की संगति से उत्तम बुद्धि चली जाती है॥१४३॥

तुम्हीं उत्कृष्ट बन्धु हो, तुम्हीं परम मित्र हो, तुम्हीं मेरी माता हो, तुम्हीं मेरे गुरू हो और सुबुद्धि के देने से तुम्हीं मेरे पिता हो॥१४४॥

इस तरह नाना प्रकार से मन्त्री की स्तुति कर राजा ने कहा—

हे मन्त्री ! रात्रि निकालने तथा विनोद के लिए नगर के मध्य ही भ्रमण किया जाय, वहाँ भी कोई आश्चर्य दिखाई दे सकता है। क्योंकि—

बुद्धिमानों का काल धर्मशास्त्र के विनोद से व्यतीत होता है और अन्य मनुष्यों का काल निद्रा तथा कलह के द्वारा व्यतीत होता है॥१४५॥

मन्त्री ने कहा—ऐसा हो। ऐसा विचार कर वे दोनों अलक्ष्य होकर-पहिचान में न आ सकें, इस प्रकार चले और नगर के भीतर आश्चर्य को देखने लगे-खोजने लगे।

दोनों ही एक स्थान पर गये, वहाँ राजा ने एक छाया पुरूष देखा, अर्थात्

उसकी छाया तो पड़ रही थी परन्तु छाया वाला पुरूष नहीं दिख रहा था। उसे देख राजा ने कहा-हे मन्त्री जी ! यह क्या दिखाई देता है ? उसने कहा-हे देव ! यह अंजन गुटिका को सिद्ध करने वाला सुवर्णखुर नामका चोर है। अंजन के बल से यह अदृश्यता को प्राप्त होकर सब मनुष्यों को लूटता है, कोई भी इसका प्रतिकार करने में समर्थ नहीं है। राजा ने कहा-यह इस समय कहाँ जा रहा है ?

यह जानने के लिए इसके साथ चलना चाहिये। ऐसा विचार कर दोनों चोर के पीछे लग गये। वह चोर क्रम से अर्हद्दास श्रेष्ठी के घर के कोट के ऊपर स्थित वट वृक्ष के ऊपर छिपकर बैठ गया। राजा और मन्त्री भी छिपकर उस वृक्ष के नीचे बैठ गये। इसी अवसर पर आठ उपवास करने वाले अर्हद्दास सेठ ने अपनी आठों स्त्रियों से कहा-हे पत्नियों ! आज नगर के बीच पुरुषों को छोड़ सभी स्त्रियाँ राजा की आज्ञा से वन क्रीडा के लिए गयी हैं। आप भी जाइये, मैं धर्मध्यान से घर में रहता हूँ अन्यथा आज्ञा भङ्ग होने से साँप के समान विषम राजा सब अनिष्ट कर देगा।

जैसा कि कहा है--

कुटिल-टेढ़ी चाल चलने वाले पक्ष में मायावी भोगी-साँप तथा भोगों से युक्त राजा, पास में रखी हुई वस्तु को लपेट लेते है, सामने स्थित को जलाते हैं और पीछे स्थित का चिन्तन करते हैं। भावार्थ-राजा साँप के समान होते हैं॥१४६॥ साँप का डसा हुआ मनुष्य तो मणि, मन्त्र, औषध के द्वारा स्वस्थ होता देखा गया है परन्तु राजा रूपी सांपों के द्वारा डसा हुआ मनुष्य फिर खड़ा होता नहीं देखा गया है॥१४७॥

जैसा कि कहा है--

राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री ये चार पदार्थ अत्यन्त निकटवर्ती हों तो विनाश के लिए होते हैं, दूरवर्ती हो तो फल देने वाले नहीं होते, अत: मध्यम भाव से इनकी उपासना करना चाहिए॥१४८॥उन स्त्रियों ने कहा-भो स्वामिन् ! हम लोगों के आज आठ उपवास हो चुके हैं। उपवास के दिन धर्म छोड़कर वन क्रीडा के लिए कैसे जाया जावे ? इस प्रकार आप विचार कीजिये। इसलिए उस राजाज्ञा से क्या प्रयोजन है ? हम लोगों ने जो उपार्जन किया है वह होगा ही। हम वन में नहीं जावेंगी।

जैसा कि कहा गया है-

जल में डूबो, मेरू की चोटी पर जाओ, युद्ध में शत्रु को जीतो, वाणिज्य तथा खेती और नौकरी आदि की समस्त पुण्य कलाएँ सीखो तथा अत्यधिक प्रयत्न कर पक्षियों के समान विस्तृत आकाश में गमन करो तो भी इस जगत् में न होने योग्य कार्य नहीं हो सकता। ठीक ही है क्रियावश पदार्थ का नाश कैसे हो सकता

है? अर्थात् नहीं हो सकता ॥१४९॥

दूसरी बात यह है कि उपवास करने वालों को क्या करना और क्या नहीं करना चाहिए इसका भी निश्चय करने योग्य है।

हिंसादि पाँच पापों का, अलंकार, आरम्भ, गन्ध, पुष्प, स्नान, अञ्जन और सूंघनी आदि का उपवास के दिन परित्याग करना चाहिये ॥१५०॥

तृष्णा से सहित होता हुआ कानों से धर्म रुपी अमृत को स्वयं पीवे, दूसरों को पिलावे और आलस्य को छोड़कर ज्ञान और ध्यान में तत्पर होवे ॥१५१॥

अर्हद्दास सेठ ने कहा-आप लोगों ने जो कहा है सत्य ही है। उपवास के दिन जैनागम का श्रवण आदि करना चाहिए। वही कर्मक्षय का कारण है न कि क्रीडा के लिये वन को जाना।

यद्यपि पृथ्वी पर सोओ, चिरकाल तक भोजन का त्याग करो, रात दिन पानी में डूबे रहो, पर्वत के मस्तक से नीचे पड़ो और मृत्यु के योग्य तथा शरीर को सुखाने वाली क्रियाएँ करो तो भी पुण्य के बिना प्राणी कृतकृत्य नहीं हो सकता ॥१५२॥

इस जीव ने अज्ञात से जो शुभ-अशुभ कर्म किये हैं उन सबको यह उपवास के द्वारा उस तरह भस्म कर देता है जिस तरह कि अग्नि ईन्धन को भस्म का देती है ॥१५३॥

जैसा कि कहा है--

जिसका चित्त एकाग्र है, जो दृढ़व्रत का धारक है, जो पञ्चेन्द्रियों की प्रीति को दूर करने वाला है, जिसका मन अध्यात्म योग में लगा हुआ है और जो निरन्तर अहिंसक रहता है उसे निश्चित ही मोक्ष प्राप्त होता है ॥१५४॥

स्त्रियों ने कहा-हे देव ! हमें और आपको अपने घर के मध्य में स्थित सहस्त्रकूट-चैत्यालय में जागरण करना चाहिये। सेठ ने कहा-ऐसा ही हो। तदनन्तर अनेक मंगल द्रव्यों से सहित सेठ और स्त्रियाँ सहस्त्रकूट- चैत्यालय गयीं। वहाँ मङ्गलमय निर्मल शब्दों आदि के द्वारा भगवान् अरिहंत परमेश्वर की पूजा कर परस्पर धर्म सम्बन्धी हर्ष से विनोद करते हुए सब बैठे गये।

तदनन्तर स्त्रियों ने कहा-हे प्रिय, हे दयासिन्धो, हे प्राणप्रिय ! आपको दृढ़ सम्यग्दर्शन कैसे हुआ, यह कहिये। सेठ ने कहा—पहले तुम सबको अपने सम्यक्त्व का कारण कहना चाहिए पीछे हम निरूपण करेंगे। जैसा कि कहा है-

द्विजों का गुरु अग्नि है, वर्णों का गुरु ब्राह्मण है, स्त्रियों का गुरु पति ही है और अतिथि सबका गुरु है॥१५५॥

इसी बीच में अर्हद्दास सेठ की जो कुन्दलता नाम की छोटी स्त्री थी उसने कहा-हे नाथ ! समस्त मनुष्यों को हर्ष उत्पन्न करने वाले ऐसे कौमुदी-महोत्सव को छोड़ कर आप अपनी स्त्रियों के साथ देवपूजा तथा तपश्चरण आदि किसलिए कर रहे हैं ? सेठ ने कहा-हे भद्रे ! हम लोगों के द्वारा जो पुण्य किया जाता है वह परलोक के लिये किया जाता है। कुन्दलता ने कहा-हे स्वामिन् ! परलोक को देखकर कोई आया भी है ? अथवा इस लोक में धर्म का फल किसने देखा है ? यदि इस लोक में परलोक से सम्बन्ध रखने वाला फल दिखाई देता तो देवपूजादि करना ठीक है अन्यथा वह सब निरर्थक और मात्र शरीर को सुखाने वाला है। पश्चात् सेठ ने कहा—हे महानुभावे ! परलोक का फल तो दूर रहे मैंने धर्म का जो फल प्रत्यक्ष देखा है उसे सुनो। कुन्दलता ने कहा—हे नाथ ! कहिये, सेठ ने कहा तथास्तु। तदनन्तर सेठ सावधान होकर अपनी सम्यक्त्व प्राप्ति की कथा कहने लगा-कथा इस प्रकार है—

इसी उत्तर मथुरा नगर में राजा पद्मोदय हो गये हैं उनकी रानी का नाम यशोमति था और उन दोनों के उदितोदय नाम का पुत्र था। वह उदितोदय इस समय राजाधिराज है। इसी नगर में संभिन्नमति नाम का राजमन्त्री था, उसकी स्त्री का नाम सुप्रभा था और दोनों के सुबुद्धि नाम का पुत्र था। वही सुबुद्धि इस समय राजाधिराज उदितोदय का मन्त्री है।

इसी मथुरा नगर में अञ्जन गुटिका आदि की विद्या में प्रसिद्ध रौप्यखुर नाम का चोर था, उसकी स्त्री का नाम रूपखुरा था और उन दोनों के स्वर्णखुर नाम का पुत्र था। वह इस समय चोर है। इसी नगर में जिनदत्त नामका सेठ था, उसकी स्त्री का नाम जिनमति था और उन दोनों का मैं अर्हद्दास नामका पुत्र हूँ जो इस समय राज सेठ होकर रह रहा हूँ।

यह सब चोर ने, राजा ने और मन्त्री ने सुना। चोर ने मन में कहा-मेरा चोर- व्यापार नित्य का है, इस समय यह क्या-क्या कहता है यह सुना जावे, इसलिए निश्चल चित्त होकर सुनने लगा। राजा और मन्त्री ने कहा-यह कौतुक हम दोनों अवश्य सुनें, ऐसा विचार कर दोनों सावधान होकर स्थित हो गये। तत्पश्चात् सेठ कहता है—हे प्रियाओ ! देखी, सुनी और अनुभूत कथा मैं कह रहा हूँ उसे ध्यान देकर सावधानी से सुनो। स्त्रियों ने कहा-यह आपका महा प्रसाद है।

सेठ कहता है-

वह रूपखुर नामक प्रसिद्ध चोर नगर में भारी चोरी करता राजा आदि को दु:साध्य हो गया। उस चोर को दु:साध्य मान कर अपने नगर की रक्षा के लिये उसे वृत्ति बाँध दी।

तदनन्तर वह चोर, चोर का कार्य छोड़कर सप्त व्यसनों में आसक्त हो और नित्य ही जुआ खेलने लगा। राजा की ओर से मिलने वाली वृत्ति से जो धन आता था उसे वह जुआ में खर्च कर देता था। ठीक ही है व्यसनों से पीड़ित जीव दोष समूह को नहीं देखता है।

जैसा कि कहा है-

जुआ, माँस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री सेवन, लोक में ये सात व्यसन कहलाते हैं, ये व्यसन जीव को अत्यन्त भयंकर नरक में ले जाते हैं॥१५६॥

अब क्रम से सात व्यसनों के दोष कहे जाते हैं-

सर्व प्रथम जुआ के दोष देखिये-

जुआ में, १.धर्म २.लक्ष्मी, ३.सुबुद्धि, ४.सुख, ५.सत्य, ६.शौच, ७.प्रतिष्ठा, ८.श्रद्धा, ९.विश्वास, और १०.सद्गति ये दस बातें नष्ट हो जाती हैं॥१५७॥

विषाद, कलह, झगड़ा, क्रोध, मान, बुद्धिभ्रम, चुगली, मत्सर और शोक ये दश जुआ के भाई हैं-सहायक हैं॥१५८॥

जुआ से कुल में कलंक लगता है, पृथ्वी पर अपयश फैलता है, मन में पश्चात्ताप होता है, अपने महत्त्व-बड़प्पन का नाश होता है, न इस जन्म में सुख होता है, और न पर जन्म में सुख मिलता है। यथार्थ में उससे चतुवर्ग-धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का विनाश ही होता है॥१५९॥

जुआरी की लक्ष्मी न परोपकार के लिये होती है, न कीर्ति के लिये होती है, न प्रीति लिये होती है, न हित के लिये होती हैं न अपने सुख के लिये होती है और न भाई-बान्धवों के सुख के लिये होती है। जुआ से अर्जित की गयी हुई लक्ष्मी केवल पाप के लिये होती है॥१६०॥

जुआरी मनुष्य का लंगोट ही वस्त्र होता है, खराब अन्न भोजन होता है, धूलि धूसरित पृथ्वी ही शय्या होती है, भद्दा वचन ही वार्तालाप होता है, वेश्या, कुटुम्ब के खोटे जन हैं, विट सहायक है, दूसरों को धोखा देना व्यापार है, चोर मित्र हैं, और बड़े पुरुष शत्रु हैं, जुआ व्यसन में आसक्त मनुष्य का प्राय: यही संसारवास का

क्रम है। भावार्थ-जुआरी सदा दु:खी रहता है॥१६१॥

अब मांस व्यसन के दोष देखिये-

जो शीघ्र ही उत्पन्न होने वाले संमूर्च्छन जीवों की संतति से दूषित है तथा नरक के मार्ग का संबल है ऐसे मांस को कौन खावेगा ?॥१६२॥

स्थावर और त्रस के भेद से प्राणी दो प्रकार के माने गये हैं उनमें से त्रस जीवों में मांस होता है और फल स्थावर कहलाते हैं॥१६३॥

यद्यपि त्रस और स्थावर जीवत्व सामान्य की अपेक्षा निश्चय से समान होते हैं तथापि त्रस अभक्ष्य ही रहते हैं जैसे माता और स्त्री दोनों स्त्रीत्व सामान्य से यद्यपि तुल्य हैं तथापि माता स्त्री के समान सेवनीय नहीं है॥१६४॥

त्रस के शरीर में जो समस्त वीर्य है वह ब्रह्मा है, मांस विष्णु है और अस्थियों-हड्डियों का समूह ईश्वर है, इसलिये ब्रह्मा, विष्णु और महेश रूप त्रस का मांस कैसे खाया जा सकता है ?॥१६५॥

मांस जीव का शरीर है परन्तु प्रत्येक जीव का शरीर मांस रूप नहीं है-त्रस जीव का शरीर तो मांस रूप ही है परन्तु स्थावर जीवों का शरीर मांस रूप नहीं है जैसे नीम वृक्ष तो है परन्तु वृक्ष नीम ही हो यह नियम नहीं है॥१६६॥

अब मदिरा व्यसन के दोष देखिये-

विरूपता, बीमारी, पीड़ा, आत्मीयजनों के द्वारा तिरस्कार, कार्य के समय का उल्लंघन, द्वेष, ज्ञाननाश, स्मृतिहरण, बुद्धिहरण, सत्पुरूष के साथ वियोग, कठोरता, नीचों का सेवन, कुचालकों का विचलित होना, धर्म, अर्थ, और मोक्ष का विनाश ये सोलह मदिरा-पान के दोष हैं॥१६७॥

मद्य, लज्जा रूप धन को हरने वाला है, कुल का अन्त करने वाला है, चित्त को संताप देने वाला है, अत्यन्त नीच जनों को प्रसन्न करने वाला है, प्रमाद को करने वाला है, शील का विध्वंस करने वाला है, शिल्पज्ञान का विनाशक है, स्मृति को हरने वाला है और पवित्रता का सर्वथा नाश करने वाला है। इस प्रकार दोषों के हजारों मार्ग से कुटिल है फिर किस कारण मद्य को पीना चाहिये ? अर्थात् किसी कारण नहीं पीना चाहिये॥१६८॥

मद्य सब दोषों में प्रमुख है, अधर्म को उत्पन्न करने वाला है, लज्जा और स्मृति का विध्वंस करने वाला है, धन का भी नाश करने वाला है, विह्वल बनाने वाला है, मूर्ख मनुष्य ही सदा जिसका सेवन करते हैं, जिसे पीकर परस्त्रीसेवन और चोरी करने के लिए गमन होता है, हिंसा, झूठ और व्यर्थ का बकवाद आदि दोषों के

समूह स्वयं आ जाते हैं उस मदिरा को कोई भी न पीवें॥१६९॥

मद्य, चिन्ता को बढ़ाने वाला है, शरीर को दुर्बल करने वाला है, विघ्न और अदया, क्रूरता को उत्पन्न करने वाला है, स्नेह को छेदने वाला है, अर्थ का नाश करने वाला है, अत्यधिक क्लेश को प्राप्त करने वाला है और गुणों से रहित है। पृथ्वीतल पर वे मनुष्य धन्य हैं और वे ही प्रतिदिन वन्दनीय हैं जिन्होंने वध-बन्धन रूप दोषों से भरे हुए मद्य का सदा के लिये त्याग कर दिया॥१७०॥

अब वेश्या व्यसन के दोष कहते हैं-

जो नट-विट और सैनिक-जनों के द्वारा भोगी गई है, सत्य, शौच आदि गुणों से जो रहित है, सैकड़ों कपटों का भण्डार है, शिष्टजनों की निन्दा का प्रमुख कारण है, अनादर का अद्वितीय स्थान है, धन की समाप्ति करने वाली है और सद्गुणों को छिपाने वाली है ऐसी वेश्या का सेवन कौन करेगा ? अर्थात् कोई नहीं॥१७१॥

धोबी की शिला के समान अथवा कुत्ते के कर्प्पर के समान चरित्र वाली वेश्याओं के साथ यदि संगम है तो संसार में परलोक की वार्ता करना व्यर्थ॥१७२॥

अब शिकार व्यसन के दोष कहते हैं-

शिकार में आसक्ति रखने वाला मनुष्य महाभयंकर नरक में बार-बार पीड़ित होता है और बहुत दु:खों को प्राप्त करता है॥१७३॥

हे पाण्डव ! पशुओं के शरीर में जितने रोम होते हैं उतने हजार वर्ष तक पशुओं का घात करने वाले मनुष्य पकाये जाते हैं॥१७४॥

अब चोरी के दोष कहते हैं-

चोरी रूप पाप वृक्ष के फल इस लोक में वध-बन्धन आदि होते हैं, और परलोक में नरक की वेदना प्राप्त होती है॥१७५॥

अब परस्त्री सेवन के दोष कहते हैं-

जो बहुत दु:खों को देने वाला है मित्रों के बीच हँसी कराने वाला है दुर्जनों को प्रिय है और सज्जन पुरुषों के लिए शोचनीय है ऐसा निन्दित परस्त्री समागम का सुख जिसने प्राप्त किया है उसने अपनी आत्मा को दु:खदायक नरक में, धन को पाप में, प्राण तराजू पर, कुल निन्दा में, दीनता हृदय में और अपकीर्ति तीनों लोकों में स्थापित की है॥१७६॥

काम से पीड़ित जिस दुर्बुद्धि मनुष्य ने परस्त्री समूह का उपभोग किया है उसने संसार में अपनी अकीर्ति की भेरी दी है, गोत्र पर स्याही का ब्रुश फेरा है, चारित्र

को जलाञ्जलि दी है, गुण समूह रूपी ग्राम में दावानल लगाया है समस्त आपत्तियों के लिये संकेत दिया है और मोक्ष नगर के द्वार पर मजबूत किवाड़ लगाया है॥१७७॥

वह चोर सप्त व्यसनों से युक्त होकर एक दिन जुआ खेलकर तथा जीता हुआ धन याचकों को देकर भूख से युक्त हो दोपहर के समय भोजन करने के लिए अपने घर की ओर चला। राजमहल के पास से जाते हुए उस चोर ने सरस रसवती -जलेबी की दूर तक फैलने वाली सुगन्ध नाक से सूघँकर मन में विचार किया-अहो! नाना रसों से युक्त भोजन की कैसी गन्ध फैल रही है। अञ्जन सिद्ध विद्या के द्वारा मुझे कुछ भी कठिन नहीं है। अञ्जन के बल से ऐसी रसवती क्यों न खायी जावे ? ऐसा मन में विचार कर, नेत्रों में अञ्जन चढ़ा कर वह राजमहल में घुस गया और राजा के साथ एक थाली में भोजन कर आ गया। इस प्रकार वह चोर प्रतिदिन राजा के साथ रसीला भोजन करता और तृप्ति को प्राप्त कर अपने स्थान पर चला जाता।

इस प्रकार क्रम से बहुत दिन व्यतीत होने पर वह राजा दुर्बल हो गया। एक दिन संभिन्न मति मन्त्री ने राजा का शरीर दुर्बल देखकर विचार किया कि क्या इनके पास अन्न नहीं है ? अन्यथा दुर्बल क्यों होंगे ? उसका रसगृद्धि नाम का व्यसन सब व्यसनों के मध्य अधिक हो गया।

जैसा कि कहा है-

जिस प्रकार अन्न से रहित शरीर, नेत्र से रहित मुख, न्याय से रहित राज्य, नमक से रहित भोजन और चन्द्रमा से रहित रात्रि सुशोभित नहीं होती उसी प्रकार धर्म से रहित जीवन सुशोभित नहीं होता॥१७८॥

इन्द्रियों में रसना इन्द्रिय, कर्मों में मोहनीय कर्म, व्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत और गुप्तियों से मनोगुप्ति ये चारों बड़ी कठिनाई से जीते जाते हैं॥१७९॥

वैर, वैश्नावर अर्थात् अग्नि, व्याधि-बीमारी, विवाद-वाचनिक संघर्ष और व्यसन जुआ आदि ये पाँच विकार महान् अनर्थ के लिये है इसलिए इन्हें वर्जित किया है॥१८०॥

मन्त्री ने विचार किया—क्या अन्न में अरुचि हो गयी है जिससे राजा दुर्बल होता जा रहा है। पश्चात् मन्त्री ने राजा से पूछा-हे स्वामिन्! आपके शरीर में दुर्बलता हुई है ? उसका कारण कहिये। यदि कोई चिन्ता है तो वह बतलाइये जिसके द्वारा आप प्रति समय दुर्बलता को प्राप्त हो रहे हैं। जैसा कि कहा है-

शरीर में रहने वाली चिन्ता सदा शरीर को जलाती रहती है। वह दुष्ट पिशाची के समान नित्य ही रक्त और माँस को ग्रसती रहती है॥१८१॥

और भी कहा है-

मैं चिता से चिन्ता में एक बिन्दु ही अधिक मानता हूँ वैसे चिता निर्जीव को जलाती है और चिन्ता जीवित को जलाती है॥१८२॥

अथवा किसी देवता आदि का दोष है जिससे दुर्बलता हो रही है। तदनतर मन्त्री ने राजा के पास जाकर पूछा-हे नाथ ! आपका शरीर निरोग है या शारीरिक तथा मानसिक पीड़ा से पीड़ित है जिससे प्रतिदिन दुर्बलता को प्राप्त हो रहा है ? अथवा अन्य कोई चिन्ता आदि है ? यदि अकथनीय नहीं है तो प्रसन्न होकर बताइये। पश्चात् राजा ने कहा-हे मन्त्रिन्! आप तो मेरे अभिन्न मित्र हैं, जो कि शरीर वत् हैं अतः आपसे अकथनीय क्या हो सकता है ? चिन्ता आदिक भी कुछ नहीं है परन्तु कौतुक उत्पन्न करने वाली एक बात सुनो। मैं प्रतिदिन दुगुना और तिगुना भोजन करता हूँ परन्तु क्षुधा शान्त नहीं होती है। उदर तृप्ति को प्राप्त नहीं होता है यह हँसी की बात किसी के आगे कही भी नहीं जा सकती। परन्तु यह जानता हूँ कि अञ्जन सिद्ध मनुष्य मेरे साथ नित्य भोजन करता है, इस कारण उदराग्नि शान्ति नहीं होती है।

यह वचन सुन मन्त्री मन में विचार करता है कि कोई अञ्जन सिद्ध मनुष्य राजा के साथ भोजन करता है इस कारण राजा दुर्बल हो गया है। ऐसा जानकर मन्त्री ने उपाय किया उसके निमित्त मंत्री ने प्रथम दिन भोजन के समय रसवती के समीप सब ओर आक के सूखे फूल लाकर डाल दिये और स्वयं छिप कर खड़ा हो गया। चारों कोनों में भयंकर धूप के धूय से परिपूर्ण घट मुख बाँधकर रख दिये। एक ओर मन्त्रवादियों को बैठाकर चारों दिशाओं में हथियारबँध सैनिक बैठा दिये और एक स्थान पर छिपा कर पहलवान पुरुष बैठा दिये।

इसी अवसर पर वह चोर पहले की तरह छिपे रूप से आया। आक के सूखे फूलों पर पैर पड़ने से वे चूर-चूर हो गये, उन्हें देख मन्त्री महोदय ने विचार किया-अहो ! यह तो कोई अञ्जन सिद्ध मनुष्य है न कि देव या विद्याधर। आज रहने दिया जाय, प्रातःकाल बुद्धिबल से इसका प्रतिकार करूँगा। ऐसा निश्चय कर दूसरे दिन भी पहले के समान आक के सूखे फूल बिखेर दिये। ऐसा कर चुकने के बाद ज्योंही वह चोर आकर भोजन गृह में प्रविष्ट हुआ त्यों ही आक के फूलों के ऊपर पैर पड़ने से उनके चूर-चूर होने का शब्द हुआ। उस शब्द से जान लिया गया कि चोर आ चुका है। तदनन्तर द्वार पर अत्यन्त दृढ़ आगल देकर अत्यधिक धूम से परिपूर्ण घड़ों के मुख पर बँधे हुए वस्त्र निकाल दिये।

तदनन्तर धूम से व्याकुल नेत्रों से अश्रुपात हुआ और उसके कारण चोर के नेत्रों में लगा हुआ अञ्जन निकल गया अञ्जन के निकलते ही सैनिकों ने उसे प्रत्यक्ष देख लिया और बाँध कर राजा के आगे उपस्थित कर दिया।

इस अवसर पर चोर ने मन में कहा-अहो ! भाग्य के वश से भोजन और घर दोनों ही गये ? शान्ति (शाम) के बिना नीति नहीं होती, विनय के बिना विद्या नहीं होती और मनुष्य पर्याय के बिना कभी धर्म की सिद्धि नहीं होती। यह मनुष्य का मार्ग है॥१८३॥

यह कर्म का उदय बीच में आ गया इसलिये मेरा भोजन और घर दोनों गये।

जैसा कि कहा है-

गीष्म ऋतु में गर्मी से पीड़ित और बहुत भारी तृषा से चञ्चल गजराज जल से भरे हुए सरोवर को देखकर शीघ्रता से समीप आया परन्तु तट के निकटवर्ती कीचड़ में इस प्रकार फँस गया कि न तो पानी ही पा सका और न तट ही। भाग्यवश दोनों ही नष्ट हो गये॥१८४॥

फिर भी चोर ने मन में कहा-मैंने विचार कुछ अन्य किया था, परन्तु भाग्य ने उसे अन्यथा कर दिया।

जैसा कि कहा है—

अन्य प्रकार से विचार किया हुआ कार्य भाग्य के द्वारा अन्यथा कर दिया, जैसे राजकन्या के प्रसाद से भिक्षुक व्याघ्र के द्वारा खा लिया गया॥१८५॥

यह दैव अघटित कार्यों को घटित-सिद्ध कर देता है और सुघटित-सुसिद्ध कार्यों को जर्जर कर देता है-विघटित कर देता है। यह देव, उन कार्यों को भी घटित कर देता है जिसका मनुष्य विचार भी नहीं करता है॥१८६॥

और भी कहा है-

अन्य प्रकार से चिन्तित कार्य भाग्यवश अन्य प्रकार का हो जाता है, जैसे, कमल के भीतर स्थित भौंरा हाथी द्वारा मारा गया॥१८७॥

'रात बीतेगी, प्रभात होगा, सूर्य उगेगा और कमल की शोभा विकसित होगी' ऐसा कमल के भीतर बन्द भौंरा विचार करता रहा, परन्तु अत्यन्त खेद है कि हाथी ने कमलिनी को उखाड़ कर चबा लिया॥१८८॥

अथवा कातरता-भय क्यों स्वीकृत किया जाये ? क्योंकि जो उपार्जन किया है वह अवश्य होगा। जैसा कि कहा है-

यदि सूर्य पश्चिम दिशा में उदित हो जाये, यदि कमल पर्वत के अग्रभाग सम्बन्धी शिला पर विकसित हो जाये, यदि मेरू पर्वत चल हो उठे और अग्नि शान्तला-शीतलता को प्राप्त हो जाये परन्तु होनहार कर्म रेखा टलती नहीं॥१८९॥

जिस प्रकार नारियल के भीतर पानी होकर रहता है उसी प्रकार होनहार होकर रहती है और जिस प्रकार गज के द्वारा भुक्त कैंथ का सार निकल जाता है उसी प्रकार जाने वाली वस्तु निकल जाती है॥१९०॥

राजा ने कहा-अहो ! हे सुभटो ? इस चोर को शूली पर चढ़ा दो। तदनन्तर राजा की आज्ञा पाकर वे सुभट उस चोर को लाठी तथा मुक्के आदि से पीट कर तथा गधे पर चढा कर शूली की ओर ले चले। मार्ग में राजा के किंकरों के द्वारा अनेक प्रकार से विडम्बना को प्राप्त हुए उस चोर को देखकर लोग परस्पर में कह रहे थे—इन्द्रियों के विषयों में आसक्त हुआ कौन मनुष्य नष्ट नहीं होता ?

जैसा कि कहा है—

हरिण, हाथी, शलभ, भ्रमर और मछली ये पाँच, स्पर्शनादि पाँच इन्द्रियों में से एक-एक इन्द्रिय के द्वारा प्रमादी होकर नष्ट हुए हैं फिर जो पाँचों इन्द्रियों द्वारा पाँचों विषयों का सेवन करता है वह क्यों न नष्ट हो ? अवश्य ही नष्ट होता है॥१९१॥

और भी कहा है—

जो एक सुवर्ण, एक ग्राम अथवा पृथ्वी का एक अंगुल भी बिना दिये हरण करता है वह जब तक पृथ्वी का नाश नहीं-प्रलय नहीं पड़ता तब तक नरक को प्राप्त होता है॥१९२॥

इसी अवसर पर किन्हीं लोगों ने परस्पर में कहा कि जब एक व्यसन से दबा हुआ मनुष्य नियम से मृत्यु को प्राप्त होता है तब जो सातों व्यसनों से दबा हुआ है उसका क्या कहना है ?

जैसा कि कहा है—

जुआ से युधिष्टिर, मांस सेवन से वक राजा, मदिरा से यदुपुत्र, वेश्या-सेवन से चारुदत्त, शिकार से ब्रह्मदत्त राजा, चोरी से शिवभूति पुरोहित और पर-स्त्री के दोष से रावण इस प्रकार हठपूर्वक एक-एक व्यसन का सेवन करने वाले लोग नष्ट हुए हैं फिर जो सभी विषयों से नष्ट हो रहा है वह क्या नष्ट नहीं होगा ? अवश्य ही नष्ट होगा॥१९३॥

तदनन्तर वह चोर नगर के बीच घुमाकर राजा की आज्ञा से शूली पर चढ़ा

दिया गया। राजा ने चारों दिशाओं में प्रच्छन्न रूप से अपने किंकर रख छोड़े थे। वे किंकर राजा की आज्ञा से गुप्त-रूप में यह देखते थे कि कौन पुरुष इस चोर के साथ बात करता है। जो पुरुष इससे बात करेगा वह राजद्रोही तथा दण्ड के योग्य होगा। उसके पास चोरी के द्रव्य की तलाशी ली जायेगी....ऐसा लोग कह रहे थे।

इसी अवसर पर जिनदास सेठ मुझ अर्हद्दास को साथ लेकर वन में स्थित प्रतिमाओं तथा साधुओं की वन्दना कर उसी मार्ग से निकले जिस, मार्ग में चोर शूली पर चढ़ाया गया था।

अर्हद्दास ने पिता से कहा—हे तात् ! यह क्या है ? पिता ने कहा-यह चोर है, पुत्र ने कहा-इसने यह अवस्था क्यों प्राप्त की ? पिता ने कहा-हे पुत्र ! पहले जो उपार्जित किया है वह उदय में आये बिना कैसे जा सकता है। अथवा पुत्र पौत्र आदि के रहते हुए भी पूर्वकृत शुभ-अशुभ फल कर्म के करने वाले के पास ही पहुँचते हैं।

जैसा कि कहा है—

जिस प्रकार हजारों गायों में बछड़े अपनी माँ के पास पहुँच जाते हैं उसी प्रकार पूर्वकृत कर्म अपने कर्त्ता-करने वाले के पास पहुँच जाते हैं॥१९४॥

और भी कहा है—

चाहे पाताल में प्रवेश कर जाओ, चाहे स्वर्ग चले जाओ, चाहे गिरिराज सुमेरु पर्वत पर चढ़ जाओ और चाहे मन्त्र, औषधि तथा शस्त्रों के द्वारा रक्षा कर लो परन्तु जो होने वाला है वह होता है—इसमें विचार का कोई कारण नहीं है॥१९५॥

यह सब सुनकर चोर ने कहा—हे सेठ जी ! तृतीय दिन निकल गया परन्तु प्राण नहीं जाते हैं। क्या करूँ ?

शृगालों ने दोनों पैर खा लिए हैं और कौओं ने सिर जर्जर कर दिया है। पूर्व कर्म ऐसा ही आया है इस समय क्या करूँ ?॥१९६॥

हे सेठ जी! तुम दया के सागर, परम धार्मिक और महावृक्ष के समान जगत् के उपकारी हो। आपके द्वारा जो किया जाता है वह सभी लोकोपकार के लिए किया जाता है। इसलिए आप मुझ प्यासे को पानी पिला दीजिये। जैसा कि कहा है-

पूर्वकृत कर्म, नगर में, देश में, पर्वत पर, भूतल पर, समुद्र में, मित्रों के सन्निधान में, आकाश-तल में और मध्य गृह में सब प्रकार से पीछा नहीं छोड़ता है॥१९७॥

जिसका चित्त सब जीवों पर दया से द्रवीभूत रहता है उसी को ज्ञान और मोक्ष प्राप्त होता है जटा रखने, भस्म रमाने और चीवर पहनने से क्या होता है ?॥१९८॥

और भी कहा है–

बड़े वृक्ष दूसरों को छाया करते हैं और स्वयं घाम में खड़े रहते हैं। वे दूसरों के लिए ही फलते हैं अपने लिए नहीं॥१९९॥

गाय परोपकार के लिए दूध देती है, वृक्ष परोपकार के लिए फलते हैं, नदियाँ परोपकार के लिए बहती हैं और सत्पुरुषों की प्रवृत्ति परोपकार के लिये होती है॥२००॥

और भी कहा है–

मात्र अपना पेट भरने में उद्यम करने वाले क्षुद्र मनुष्य हजारों हैं परन्तु परोपकार करना ही जिसका स्वार्थ है ऐसा सज्जनों में अग्रसर एक-विरला ही होता है। दुःख से भरने योग्य उदर को पूर्ण करने के लिये वडवानल समुद्र को पीता है परन्तु मेघ, गर्मी से परिपूर्ण जगत् का संताप दूर करने के लिये पीता है॥२०१॥

हे सेठ जी ! मैं मानता हूँ कि तुम परोपकार के लिये रचे गये हो। इस तरह अनेक प्रकार से सेठ की स्तुति की। चोर के यह वचन सुनकर यद्यपि सेठ ने कुछ करना राजाज्ञा के विरूद्ध समझा तथापि आद्रचित्त से युक्त होने के कारण परोपकार के लिए सेठ ने कहा –हे वत्स ! मैंने बारह वर्ष तक गुरू की सेवा की। आज प्रसन्न होकर उन्होंने मन्त्र का उपदेश दिया है। यदि इस समय मैं पानी के लिये जाता हूँ तो वह मन्त्र भूल जाऊँगा इसलिये नहीं जाता हूँ।

चोर ने कहा–इस मन्त्र से क्या सिद्ध होता है ? सेठ ने कहा ? यह पञ्च नमस्कार नामका मन्त्र सब सुख देता है।

जैसे कि कहा है–

पञ्च परमेष्ठियों के पदों से, संग्राम, समुद्र, गजेन्द्र, सर्प, दुष्ट बीमारी, जल, शत्रु और बन्धन से होने वाले तथा चोर, ग्रह, भ्रम, राक्षस और शाकनियों से उत्पन्न भय नष्ट हो जाते हैं॥२०२॥

पञ्च नमस्कार मन्त्र के अक्षरों से तन्मय वह आराधना रूपी देवता, देवों की संपत्ति का आकर्षण करती है, मुक्ति लक्ष्मी का वशीकरण है, चतुर्गति सम्बन्धी विपत्तियों का उच्चाटन करती है, अपने पापों के साथ द्वेष करती है, दुर्गति की ओर जाने वालों का स्तम्भन करती है- उन्हें रोकती है और मोह का सम्मोहन करती है॥२०३॥

हजारों पाप करके सैकड़ों जीवों का घात कर इस मंत्र की आराधना से तिर्यञ्च भी कल्याण को प्राप्त हुए हैं ॥२०४॥

चोर ने कहा–जब तक आप पानी लाते हैं तब तक मैं इस मन्त्र का

उच्चारण करता रहूँगा, इसलिये मुझे उपदेश देकर पानी के लिए शीघ्र जाइये। सेठ ने कहा-'तथास्तु'! इस प्रकार मन्त्र का उपदेश देकर और मुझे वहीं छोड़कर सेठ स्वयं पानी के लिये चला गया।

तदनन्तर एकाग्रचित से पञ्चपरमेष्ठी मंत्र का उच्चारण करते हुए चोर ने प्राण छोड़ दिये। पंचपरमेष्ठी मन्त्र के माहात्म्य से वह चोर सौधर्म स्वर्ग में सोलह आभरणों से विभूषित तथा अनेक परिजनों से सहित देव हुआ। जिनदत्त सेठ कुछ समय बाद पानी लेकर चोर के समीप आया तब निर्विकार भाव से हाथ जोड़े चोर को देखकर कहा-अहो ! यह तो उत्तम समाधि से स्वर्ग चला गया। पश्चात् पुत्र ने कहा-हे पिताजी ! सत्संगति किसका पाप नहीं हरती, अर्थात् सभी का हरती है।

जैसा कि कहा है—

सत्संगति, बुद्धि की जड़ता को हरती है, वाणी में सत्य का सिंचन करती है मान की उन्नति करती है, पाप को दूर करती है, चित्त को प्रमुदित (आनंदित) करती है और कीर्ति को दिशाओं में विस्तृत करती है। कहो, सत्संगति पुरुषों का क्या-क्या नहीं करती है अर्थात् सब कुछ करती है॥२०५॥

तदनन्तर सेठ ने वापिस लौटकर परम गुरूओं की वन्दना की, उन्हें सब समाचार कहा और स्वयं उपवास का नियम लेकर उसी जिनालय में स्थित हो गया। गुरू ने कहा-महापुरूषों की संगति से किसकी उन्नति नहीं होती ? अर्थात् सभी की होती है।

जैसा कि कहा है—

संतप्त लोहे पर पड़े हुए पानी का नाम भी सुनाई नहीं पड़ता, वही पानी कमलिनी के पत्ते पर स्थित होकर मोती के समान दिखाई देता है और समुद्र के भीतर सीप के पुट में जाकर मोती बन जाता है। ठीक ही है संगति से ही मनुष्यों के गुण प्रायः अधम, मध्यम और उत्तम हो जाते हैं॥२०६॥

महान् पुरूषों की संगति किस की उन्नति का कारण नहीं है किन्तु सभी की उन्नति का कारण है। क्योंकि गंङ्गा में प्रविष्ट हुआ गलियारे नाले का पानी भी देवों के द्वारा वन्दनीय हो जाता है॥२०७॥

गुप्तचर ने राजा को आगे कहा कि हे देव ! जिनदत्त सेठ ने चोर के साथ वार्तालाप किया है। राजा ने कहा-वह राजद्रोही है, उसके पास चोरी का धन है। इस प्रकार क्रुद्ध होकर राजा ने उसे पकड़ने के लिये योद्धा भेजे। जब तक यहाँ ऐसा होता है तब तक सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुए चोर ने कहा-पुण्य के बिना यह सामग्री प्राप्त नहीं हो सकती।

जैसा कि कहा है—

मिष्ट अन्नपान, शयन, आसन, गन्ध, माला, वस्त्र, स्त्री, आभूषण, वाहक, यान, और महल आदि सभी वस्तुयें पूर्वकृत पुण्य के उदयकाल में प्रयत्न के बिना ही पुरुष के पास पहुँच जाती हैं॥२०८॥

'भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्' इस सूत्र के अनुसार कहे हुए अवधिज्ञान के द्वारा समस्त वृत्तान्त जानकर उसने कहा कि वह जिनदत्त मुझे धर्मोपदेश को देने वाला है, मैं उसका उपकार कभी नहीं भूलूँगा अन्यथा मुझे छोड़ दूसरा पापी नहीं होगा।

कहा भी है-

जो मन्दबुद्धि मनुष्य प्रत्युपकार नहीं करता है वह लोक में मनुष्यों के द्वारा निन्दित जन्म को व्यर्थ ही धारण करता है॥२०९॥

जो एक ही अक्षर के उपदेशक अथवा एक ही पदार्थ के दाता को भूल जाता है वह पापी है फिर धर्मोपदेशक को भूलने वाले की क्या बात है॥२१०॥

इस प्रकार सब कुछ विचार कर वह देव अपने गुरु का उपसर्ग निवारण करने के लिए दण्डधारी होकर श्रेष्ठी के गृह द्वार पर बैठ गया और आये हुए राजा के सेवकों से उसने कहा-अरे क्षुद्र पुरुषो ! किस लिये आये हो ? उन्होंने कहा—रे रंक ! हमारे हाथ से क्या मरना चाहता है ? उसने कहा—अरे तुम लोग अनेक तथा स्थूल हो सही पर उससे क्या प्रयोजन ? जिसका तेज सुशोभित होता है वही बलवान् होता है। जैसा कि कहा है-

हाथी स्थूल होता है, वह भी अंकुश के वश होता है सो क्या वह अंकुश हाथी के बराबर होता है ?वज्र से भी ताड़ित हुए पहाड़ गिर जाते हैं सो क्या पहाड़ वज्र के बराबर होते हैं और दीपक के प्रज्वलित होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है सो क्या अन्धकार दीपक के बराबर होता है ? अर्थात् नहीं होता। परमार्थ यह कि है कि जिसके तेज होता है वही बलवान् होता है। स्थूल लोगों में क्या विश्वास किया जाय॥२११॥

सिंह दुबला होकर भी गजराजों के समान नहीं होता। बल प्रधान है, मांस की राशि नहीं। वन में सिंह की गर्जना से हाथियों के अनेक झुण्ड मद छोड़ने लगते हैं॥२१२॥

तदनन्तर उसने कितने ही राजकिटरों को दण्ड से पृथ्वी पर गिरा दिया, कितनों को मार डाला और प्रचण्ड दण्ड को धारण करने वाले कितने ही लोगों को मोह में डाल दिया-मूर्च्छित कर दिया। यह सब समाचार किसी ने राजा के आगे कह दिया।

जिससे राजा ने उसे मारने के लिये और भी सेवक भेजे परन्तु वे भी उसी तरह मारे गये। तब राजा कुपित होकर चतुरङ्ग सेना के साथ स्वयं आया। बहुत भारी युद्ध होने पर सभी मारे गये। एक राजा ही रह गया। देव ने महाभयंकर राक्षस का रूप रख लिया और आये हुए सब लोगों तथा राजा को भय से भ्रान्तचित्त कर दिया। राजा भय से भीत हो गया। भय से युक्त हो उसने भागना शुरू किया परन्तु वह देव पीछे लग गया। उसने कहा- अरे पापी ! इस समय तू जहाँ जायगा वहीं मारूँगा। यदि गाँव के बाहर स्थित सहस्रकूट जिनालय में निवास करने वाले जिनदत्त सेठ की शरण में जायेगा तो बचाऊँगा, अन्यथा नहीं। यह वचन सुन राजा सेठ की शरण में प्रविष्ट हुआ। राजा ने कहा हे सेठ ! बचाओ तुम्हारी शरण में प्रविष्ठ हुआ (आया) हूँ। रक्षा करने पर पुनः प्रतिष्ठा होती है। जैसा कि कहा है—

जीर्ण जिनमन्दिर, जिनबिम्ब, पुस्तक और श्रद्धा/शिथिल श्रद्धा का उद्धार कर फिर से स्थापित करना पूर्व पुण्य से अधिक कहलाता है॥२१३॥

नष्ट हुए कुल, कुआ, तालाब, बावड़ी, राज्यभ्रष्ट तथा शरणागत राजा, गाय, ब्राह्मण, जीर्ण देवमन्दिर का जो उद्धार करता है उसे चौगुना पुण्य होता है॥२१४॥

ऐसा सुनकर सेठ ने मन में विचार किया यह राक्षस कोई विक्रियाधारी है। अन्य दूसरे का ऐसा माहात्म्य नहीं दिखाई देता। इसके पश्चात् कहा-हे देव ! भागते हुए के पीछे नहीं लगा जाता है।

जैसा कि कहा है-

भागते हुए भयभीत मनुष्य का बलवान् को पीछा नहीं करना चाहिए क्योंकि कदाचित् यह हो सकता है कि मरने का निश्चय कर वह शूरवीरता को प्राप्त हो जाय॥२१५॥

सेठ के यह वचन सुन वह राक्षस रूप छोड़कर देव हो गया। उसने तीन प्रदक्षिणाएं देकर सेठ को नमस्कार किया। तदनन्तर देव और गुरु को नमस्कार कर वह देव बैठ गया। राजा ने कहा-हे देव ! स्वर्ग में विवेक नहीं है क्योंकि देव और गुरु को छोड़ कर तुमने पहले गृहस्थ को नमस्कार किया है। यह क्रमभङ्ग है, जैसा कि कहा है-

जहाँ प्रसिद्ध क्रम का उल्लङ्घन होता है वह अपक्रम कहलाता है जैसे भोजन कर के स्नान करता है और उसके बाद गुरु तथा देव की वन्दना करता है॥२१६॥

देव ने कहा-हे राजन् ! मैं सभी विवेक जानता हूँ कि पहले देव को नमस्कार

किया जाता है तदनन्तर गुरु को और उसके पश्चात् श्रावक को यथायोग्य इच्छाकार किया जाता है। किन्तु यहाँ कारण है, यह सेठ मेरा मुख्य गुरु है इस कारण इसे पहले नमस्कार करता हूँ। राजा ने देव से पूछा कि किस सम्बन्ध से यह सेठ तुम्हारा मुख्य गुरु हुआ है ? तब उस देव ने अपने चोर के भव का और वर्तमान भव का समस्त पूर्व वृत्तान्त राजा के सामने कह दिया। वहाँ किसी ने कहा—अहो ! यह तो सत्पुरूष है—सज्जन है, सज्जन किये हुए उपकार को नहीं भूलते हैं। जैसा कि कहा है—

नारियल के वृक्षों ने अपनी प्रथम अवस्था में थोड़ा सा पानी पिया था इसलिये पानी का उपकार मानते हुए वे अपने शिर पर जल सहित फलों का बहुत भारी भार धारण करते हैं और मनुष्यों को जीवन पर्यन्त अमृत के तुल्य पानी देते हैं सो उचित ही है क्योंकि सत्पुरुष किये हुए उपकार को कभी भूलते नहीं हैं॥२१७॥

राजा ने कहा — किससे प्रेरित होते हुए इस सेठ ने ऐसा किया ? देव ने कहा- हे राजन् ! महापुरुष का स्वभाव है-जो सज्जन होते हैं वे प्रार्थना के बिना ही सबका उपकार करते हैं। जैसा कि कहा है—

किसकी आज्ञा से सूर्य लोगों के अन्धकार को नष्ट करता है ? मार्ग में छाया के लिये वृक्षों के हाथ किसने जोड़े हैं ? अथवा वृष्टि के लिये मेघों से कौन प्रार्थना करते हैं ? किसी ने नहीं, परमार्थ यह है कि साधु जन स्वभाव से ही पर का हित करने के लिये उद्यत रहतें हैं। सज्जन और दुर्जनों का यह महान स्वभाव भेद है॥२१८॥

हंस निकट में रहता हुआ भी कमल के पत्तों को छिन्न-भिन्न करता है और सूर्य दूर स्थित होकर भी उन्हें संतुष्ट करता है॥२१९॥

पश्चात् सब के आगे राजा ने कहा—

सब धर्मों के मध्य में यह जैनधर्म महान् पुण्य से प्राप्त होता है। सेठ ने कहा-हे राजन् ! आपका कहना सचमुच ही चूड़ामणि के सामन है। किन्तु हीन पुण्यात्मा जनों के द्वारा यह जैन धर्म प्राप्त नहीं किया जा सकता। जैसा कि कहा है—

प्रकट महिमा से युक्त जैन धर्म, सज्जनों के साथ संगति, विद्वानों की गोष्ठी, वचनों की चतुराई, समस्त शास्त्रों में कुशलता, पतिव्रता स्त्री, सद्गुरुओं के चरण कमलों की सेवा, शुद्ध शील और निर्मल बुद्धि, अल्प पुण्यशाली जीवों को प्राप्त नहीं होती है॥२२०॥

सचमुच ही पुण्य की महिमा लोक में सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि कहा है-

पुण्य से बुद्धिमान जनों को इष्ट का समागम होता है, कर्मों की हानि होती है, पवित्र तीर्थ स्वरूप शरीर को धारण करने वाले शुभाचारी साधु की प्राप्ति होती है,

कुमार्ग सुमार्ग हो जाता है, उत्कृष्ट बुद्धि, कान्ति, कला, कौशल और तीन लोक के द्वारा पूजित त्रिलोकी नाथ का समस्त सौभाग्य, पुण्य से ही प्राप्त होता है॥२२१॥

तदनन्तर उस देव ने पञ्चाश्चर्यों के द्वारा जिनदत्त सेठ की बहुत भारी पूजा की और अत्यधिक प्रशंसा की। मैं चोर होकर भी आपके प्रसाद से देव हो गया हूँ। आपका परोपकारीपन अकारण है अर्थात् आप किसी स्वार्थ के बिना ही परोपकार करते हैं। यह सब प्रत्यक्ष देख कर तथा वैराग्य से युक्त होकर राजा ने कहा—अहो ! धर्म की महिमा विचित्र है। देव भी धर्म का दास पना करते हैं। इस प्रकार सभी स्त्री तथा बालक आदि जानते हैं। जैसा कि कहा है-

धर्म के प्रभाव से साँप हार बन जाता है, तलवार उत्तम फूलों की माला के समान आचरण करने लगती है, विष भी रसायन हो जाता है, शत्रु प्रीति करने लगता है, देव प्रसन्न चित्त होकर वश में हो जाते हैं। अधिक क्या कहें ? जिसके धर्म है उसके लिये आकाश भी निरन्तर उत्तम रत्नों की वर्षा करता है॥२२२॥

तदनन्तर राजा ने पुत्र को अपने पद पर बैठाकर दीक्षा ग्रहण कर ली। इसी प्रकार जिनके चित्त वैराग्य से व्याप्त हैं ऐसे मन्त्री, सेठ अथवा अन्य लोगों ने दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण कर ली। कई अणुव्रतों को धारण करने वाले श्रावक हुए और कई भद्रपरिणामी हुए। सब की जैनधर्म में स्थिरता हुई। देव भी दर्शन कर स्वर्ग चला गया।

तदनन्तर अर्हद्दास ने कहा-हे पत्नियों ! यह सब मैंने प्रयत्क्ष देखा है, सुना है और अनुभव किया है। अत: मैं सम्यक्दर्शन का धारी हुआ हूँ। भार्याओं ने कहा - हे स्वामिन् ! जो आपने बाल्यावस्था में अच्छी तरह देखा, सुना और अनुभव किया है उस सबको हम लोग श्रद्धा करती हैं, इच्छा करती हैं, उसकी रुचि करती हैं। इस धर्मफल की अनुमोदना का मुझे भी पुण्य हो।

तदनन्तर छोटी स्त्री कुन्दलता ने कहा कि यह सब झूठ है इसलिए मैं इसकी न श्रद्धा करती हूँ, न इच्छा करती हूँ और न इसकी रुचि करती हूँ। कुन्दलता का ऐसा कहना सुनकर राजा, मंत्री और चोर कुपित होकर विचार करते हैं। राजा ने कहा कि यह मैंने प्रत्यक्ष देखा है, मेरे पिता मुझे राज्य देकर तपस्वी हुए थे। कोतवाल ने भी ऐसा ही कहा कि यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है। मेरे पिता ने चोर को शूली पर चढ़ाया था। मंत्री ने भी कहा कि पञ्च नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से चोर स्वर्ग में देव हुआ, वहाँ से आकर उसने सेठ का उपसर्ग दूर किया। राजा कहता है कि सभी लोग जानते हैं फिर यह पापिनी क्यों नहीं मानती है, सेठ के वचन को झूठा बतलाती है। इस समय सभा के बीच जाकर कुछ भी कहा नहीं जा सकता परन्तु

प्रात:काल इसका निग्रह करूँगा। फिर चोर ने कहा कि यह नीच स्वभाव वाली है जिसके प्रसाद से जीवित है उसी की बुराई करती है।

इस प्रकार प्रथम कथा पूर्ण हुई।

सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली मित्रश्री की कथा-

इस प्रकार सम्यक्त्व को प्राप्त कराने वाली कथा का निरूपण कर सेठ मित्रश्री से कहते हैं कि प्रिये ! तुमने भी श्री धर्म का कुछ माहात्म्य देखा, सुना अथवा अनुभव किया हो तो उसे कहो। तदनन्तर मित्र श्री धर्म का फल कहती है।

मगध देश के राजगृह नगर में राजा संग्रामशूर राज्य करते थे। उसकी रानी का नाम कनकमाला था। उसी नगर में सेठ वृषभदास रहता था जो महान् सम्यग्दृष्टि था, पञ्च परमेष्ठी के गुणों की भक्ति से सहित था, परम धार्मिक था और संपूर्ण (पाँच शुभ) लक्षणों से सहित था।

जैसा कि कहा है-

जो योग्य पात्र में त्याग वाला हो, गुण में राग करने वाला हो, भोग में परिजनों के साथ रहता हो, शास्त्र में ज्ञाता हो और युद्ध में योद्धा हो वही पञ्च लक्षणों- पाँच गुणों को धारण करने वाला पुरुष है॥२२३॥

उस सेठ की स्त्री की नाम जिनदत्ता था। वह जिनदत्ता भी परम धार्मिक, सम्यक्त्वादि गुणों सहित ,दक्षता आदि गुणों के समूह से मूर्तिमति लक्ष्मी के समान तथा समस्त शुभ लक्षणों से युक्त थी। जैसा कि कहा है-

जो आज्ञाकारिणी हो, संतुष्ट हो, दक्ष हो, साध्वी हो, पतिव्रता हो तथा विदुषी हो। इन्हीं गुणों से युक्त स्त्री लक्ष्मी ही है इसमें संशय नहीं है॥२२४॥

जिनदत्ता यद्यपि इस प्रकार के गुणों से विशिष्ट थी परन्तु वन्ध्यात्व नामक दोष से दूषित थी। किसी भी उपाय से उसके पुत्र नहीं होता था। एक दिन अवसर पाकर तथा हाथ जोड़कर उसने अपने पति से कहा-हे स्वामिन् ! पुत्र के बिना कुल सुशोभित नहीं होता है तथा वंश का विच्छेद भी हो जायगा इसलिये सन्तान की वृद्धि के लिये फिर भी दूसरा विवाह करने के योग्य है। जैसा कि कहा है—

यौवन, सौन्दर्य, प्रेम और आभूषणों का समूह सब कुछ, एक पुत्र के बिना भूसी के समान है॥२२५॥

हाथी मद से, पानी कमलों से, रात्रि पूर्ण चन्द्रमा से, वाणी व्याकरण से, नदियाँ हंस-हंसिनियों के युगलों से, सभा विद्वानों से, स्त्री शील से, घोड़ा वेग से,

मन्दिर नित्य प्रति होने वाले उत्सवों से, कुल सत्पुत्र से, राजा से पृथ्वी और धर्मात्माओं से तीनों लोक सुशोभित होते हैं॥२२६॥

रात्रि का दीपक चन्द्रमा है, प्रभात का दीपक सूर्य है, तीन लोक का दीपक धर्म है और कुल का दीपक उत्तम पुत्र है॥२२७॥ और भी कहा है-

संसरण-पञ्च परावर्तन से थके हुए जीवों के लिये विश्राम की भूमियाँ तीन हैं-पुत्र, स्त्री और सत्संगति॥२२८॥ मिथ्यादृष्टि लोग भी ऐसा कहते हैं कि पुत्र के बिना गृहस्थ की गति नहीं है। जैसा कि कहा है—

पुत्र रहित मनुष्य को गति नहीं होती, उसे स्वर्ग तो प्राप्त होता ही नहीं है, इसलिये पुत्र का मुख देखकर पश्चात् भिक्षुक-संन्यासी हुआ जाता है॥२२९॥

सेठ ने कहा-हे भद्रे ! तुम्हारा कहना यद्यपि सत्य है तथापि असत्य है। यह शरीर भी पर है, सभी वस्तुओं को अनित्य देखकर जो भोगों का अनुभव करता है वह विवेक से शून्य ही है। फिर सेठ ने कहा कि मेरे सत्तर वर्ष पूर्ण हो चुके हैं-विवाह किया जाता है तो लोक में मोह की महिमा, हँसी और विरूद्धता होगी।

जैसा कि कहा गया है—

शरीर को ग्रसने के लिये यमराज ने यह इच्छा कर रक्खी है परन्तु वह मोहोदय से अन्तरित हो रही है। जो मनुष्य इस शरीर को नित्य मानते हुए व्यर्थ ही विषयों में मोहित हो रहे हैं वे विवेक से शून्य हैं॥२३०॥

रोग होने पर शरीर को आभूषणों से सजाना, शोक रहते हुए भी भोगों में निमग्न रहना, दरिद्रता होने पर भी घर में रहना और अवस्था पक जाने-वृद्धावस्था आ जाने पर भी स्त्री समागम करना यह सब परस्पर विरूद्ध बातें है। इन्हें जानता हुआ भी मनुष्य, जिससे प्रेरित हो इन्हें करता है वह महान् मोहरूपी मल्ल समस्त तीनों लोकों को जीतता है॥२३१॥

स्त्री ने कहा-हे स्वामिन् ! यदि भोगों के राग के वशीभूत हो ऐसा अपराध किया जाता है। तो वह हँसी का कारण होता है परन्तु सन्तान वृद्धि के लिये ऐसा करना दोष नहीं है। इस प्रकार स्त्री के कहने पर सेठ ने बड़ी कठिनाई से दूसरा विवाह करना स्वीकृत कर लिया।

उसी नगर में अपने पिता के भाई जिनदत्त और उनकी स्त्री बन्धुश्री की कनकश्री नामक पुत्री (चचेरी बहिन) थी। सेठानी ने उसे अपनी सपत्नी बनाने के लिये याचना की। परन्तु दोनों ने कह दिया कि सौत के ऊपर पुत्री नहीं दी जाती है। जिनदत्ता ने कहा—भोजन का समय छोड़कर मैं कनकश्री के घर नहीं आऊँगी,

जिन मन्दिर में ही रहूँगी, ऐसी शपथ कर उसने कनकश्री की याचना की। उसके माता-पिता ने उसे दे दिया और शुभ मुहूर्त में विवाह हो गया।

तदनन्तर जिनदत्ता सेठानी, धीरे-धीरे घर का सब भार सपत्नी के हाथ में छोड़ कर दिन रात धर्म में तत्पर पहने लगी। वह घर की चिन्ता नहीं करती थी। क्रमक्रम से कनकश्री के पुत्र हो गया। इस प्रकार जिनदत्ता जिन मन्दिर में रहने लगी और दम्पत्ति अपने घर में सुख से रहने लगे।

एक दिन कनकश्री अपनी माता के घर (मायके) गयी। माता ने उससे पूछा कि हे पुत्री ! अपने पति के साथ सुख का अनुभव करती हो या नहीं ? पुत्री ने कहा मात ! मेरा पति मेरे साथ वार्तालाप भी नहीं करता है कामभोग की तो बात ही क्या है ? दूसरी बात यह है कि मुझे सपत्नी के ऊपर विवाह के सुख की बात क्यों पूछती हो ? मुझे तिल तुषमात्र भी सुख नहीं है, जिनदत्ता ने मेरे पति को सब प्रकार से वश में कर रक्खा है। वे दोनों दम्पत्ति सदा के लिये महल/मंदिर में रहते हैं, वही सुख का अनुभव करते हैं, मध्याह्न काल तथा संध्या समय भोजन करने के लिये आते हैं। मैं अकेली दुर्बल शरीर होकर रात्रि में भाग्य की निन्दा करती रहती हूँ। यह सब मिथ्या समाचार कनकश्री ने मायाचार से अपनी माता के आगे कहा।

तदनन्तर बन्धुश्री ने कहा कि रति स्वरूप मेरी इस पुत्री को छोड़कर मन्दिर में जरा जर्जरित वृद्धा स्त्री का सेवन करता है। इसीलिये कामी मनुष्य उचित कार्य को नहीं जानता है। जैसा कि कहा है—

क्या कुवलय-नील कमल के समान नेत्रों वाली देवाङ्गनाएँ थी जिससे इन्द्र ने अहिल्या नामक तापसी स्त्री का सेवन किया। ठीक ही है क्योंकि हृदय रूपी कुटी में कामाग्नि के प्रज्वलित रहते हुए विद्वान् होकर भी उचित और अनुचित को कौन जानता है ? ॥२३२॥ उसे लज्जा भी नहीं है जैसा कि कहा है-संसार से विरक्त हो दीक्षा लेने के लिए विन्ध्याटवी की ओर जाने वाले किसी पुरुष की ओर उसकी पूर्व प्रेमिका काम विह्वल दृष्टि से देख रही है उसे संबोधित करने के लिये विरक्त पुरुष कहता है कि कामीजन न लज्जित होता है, न किसी को देखता है, न हित की बात सुनता है और न गुरुजन, आत्मीयजन अथवा अन्यजनों की अपेक्षा करता है। हे कमल पत्र के समान विशाल नेत्रों को धारण करने वाली भद्रे ! तुम आगे जाओ, मेरे नेत्रों का राज मार्ग तो विन्ध्याटवी की ओर जा रहा है-मैं संसार की मोह ममता से विरक्त हो दीक्षा लेने के लिये विन्ध्याटवी की ओर जा रहा हूँ॥२३३॥

अहो ! कामदेव की महिमा आश्चर्यकारक है। वह महान् विद्वान् को भी विडम्बित कर देता है। जैसा कि कहा है-

कामदेव, कलाकुशल मनुष्य को क्षणभर में विकल कर देता है, पवित्र मनुष्य की हँसी उड़ाता है,विद्वान् की विडम्बना करता है और धीर वीर पुरुष को नीचा कर देता है॥२३४॥

हे पुत्रि ! बहुत कहने से क्या ? यह पापिनी जिनदत्ता जिस उपाय से मरेगी वह उपाय मैं करती हूँ। इस प्रकार पुत्री के मन में संतोष उत्पन्न कराकर उसे पति के घर (ससुराल) भेज दिया। उस कनकश्री ने उस ढ़ंग से दोषों का उद्‌घाटन किया जिससे कि माता के मन में जिनदत्ता के ऊपर ईर्ष्या का भाव उत्पन्न हो गया। वह मन में वैर बाँध कर रह गयी।

एक समय, जो अनेक अवधूतों से सहित था, जिसका शरीर हड्डियों के आभूषणों से विभूषित था, जो त्रिशूल, डमरू तथा नूपुर आदि से युक्त था तथा जिसकी आकृति अत्यन्त भयंकर थी ऐसा एक कापालिक नाम का योगी भिक्षा के लिये बन्धुश्री के घर आया। बन्धुश्री ने ऐसे योगी को देखकर मन में विचार किया कि अहो ! मैंने अनेक कापालिक देखे परन्तु इसका जैसा महात्म्य है वैसा नहीं दिखाई देता। इसके पास मेरे कार्य की सिद्धि हो जायेगी ऐसा निश्चय कर उसने अपना कार्य कराने के लिये उसे अनेक जलेबियों सहित भिक्षा दी। यह ठीक ही कहा गया है कि लोक में तभी तक किसी की कीर्ति होती है जब तक दान देता है।

पश्चात् बन्धुश्री ने कापालिक से कहा कि हे योगिन् ! तुम मेरे घर भिक्षा के लिए नित्य ही आया करो। कापालिक ने भी बन्धुश्री का कहना स्वीकृत कर लिया। इस तरह वह योगी सदा बन्धुश्री के घर आने लगा। जैसा कि कहा है–

संसार में कार्य के लिये ही कोई किसी की सेवा करता है परमार्थ से कोई किसी का प्रिय नही है। दूध का क्षय देखकर बछड़ा स्वयं ही माता को छोड़ देता है॥२३५॥

इस प्रकार प्रतिदिन वह बन्धुश्री योगी के लिये भिक्षा देने लगी। एक दिन उसकी भक्ति देखकर योगी ने मन में विचार किया कि अहो ! यह तो माता है, इसका कुछ उपकार करूँगा। जैसा कि कहा है–

पिता, यज्ञोपवीत करने वाला, विद्या देने वाला, अन्न देने वाला और भय से रक्षा करने वाला ये पाँच पिता माने गये हैं॥२३६॥

और भी कहा है–

राजपत्नी, गुरु पत्नी, मित्र पत्नी, पत्नी की माता और अपनी माता, ये पाँच माताएँ मानी गयी हैं॥२३७॥

तदनन्तर योगी ने कहा-हे माता ! मुझे महा विद्या की सिद्धि है, तुम्हारा जो प्रयोजन हो, मैं वैसा करूँगा। पश्चात् रोती हुई बन्धुश्री ने गद्गद्कण्ठ से उस कापालिक से सभी हाल कह दिया। अधिक क्या कहा जाय ? उसने यहाँ तक दिया कि यह पापिनी जिनदत्ता तेरे द्वारा मारने योग्य है। तुम्हारी बहिन का घर में निवास जिस तरह हो सके उस तरह तुम्हें करना चाहिये। तब योगी ने कहा-हे माता। तुम स्थिर होओ-निश्चिंत रहो, मुझे जीवों को मारने में कोई शंका नहीं है। आज मैं कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के दिन श्मशान में विद्या सिद्ध कर निश्चित ही जिनदत्ता को मार डालूँगा और अपनी बहिन कनकश्री को सुखी करूँगा।

यदि ऐसा नहीं कर सका तो अग्नि में प्रवेश करुँगा। योगी के ऐसा कहने से बन्धुश्री अपने कार्य की सिद्धि समझ हर्षित हुई।

कापालिक भी ऐसी प्रतिज्ञा कर तथा कहकर चतुर्दशी के दिन पूजा की सामग्री लेकर श्मशान गया। वहाँ अपने स्थान पर पहुँचकर वह एक मुर्दा ले आया तथा पूजा कर उसके हाथ में तलवार बाँध कर बैठ गया। बैठकर उसने उस मुर्दे की बड़ी पूजा की, मन्त्र का जाप किया, पश्चात् वेताली महाविद्या की आराधना कर उसका आह्वान किया। मन्त्र के प्रभाव से वह वेताली विद्या शीघ्र ही मृतक के शरीर में प्रत्यक्ष हो गयी-दिखाई देने लगी। उसने कहा-हे कापालिक ! जिस कार्य के वश मेरी आराधना की है वह कार्य कहो। योगी ने कहा-हे महामाये ! जिन मन्दिर में स्थित, कनकश्री की सौतन जिनदत्ता को मार डालो। कापालिक के वचन सुनकर विद्या ने कहा-'तथास्तु'-जैसा आपने आदेश दिया है वैसा ही करूँगी। तदनन्तर हर्ष से किल-किल शब्द करती हुई वह विद्या जिनदत्ता के पास गयी। ज्योंही वह जिन मंदिर में देखती है त्योंही उसने उस जिनदत्ता को देखा जोकि प्रोषध व्रत लिये थी, जिसका चित्त सम्यक्त्व की भावना से युक्त था, जो कायोत्सर्ग से खड़ी थी तथा पञ्च परमेष्ठी के पदों का-नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करने में उद्यत थी। वह वेताली विद्या यद्यपि अत्यन्त शक्तिशालिनी थी तथा-धर्म के माहात्म्य से उसका कुछ भी कर सकने के लिये समर्थ नहीं हो सकी।

जैसा कि कहा है-

जिसके हृदय में सम्यक्त्वरूपी देव निवास करता है उसके नाम से सिंह, श्रृगाल, हाथी, अग्नि, पानी, भयंकर, सर्प, विष, समुद्र, स्थल, गर्त, मणिधारी सर्प, चोर, दास, ग्रह, शाकिनी, राग और शत्रु तुल्य उत्कृष्ट आपत्तियाँ विलीन हो जाती हैं॥२३८॥

तदनन्तर वह विद्या तीन प्रदक्षिणाएँ देकर तथा लौटकर श्मशान में चली गयी। उस भयंकर विद्या को देखकर योगी भाग गया। पश्चात् उस मृतक शरीर में

स्थित विद्या को देखकर योगी ने पुनः उसे प्रेरित किया। उसके द्वारा प्रेरित विद्या जिनदत्ता के पास पुनः गयी परन्तु पहले के समान जब कुछ भी करने में समर्थ नहीं हो सकी तब अट्टहास करके वापिस आ गयी। ऐसा तीन बार हुआ, चौथी बार अपने मरण के भय से योगी ने कहा-हे महा भैरवि ! कनकश्री और जिनदत्ता के बीच जो दुष्टा हो उसे शीघ्र मार डालो।

तदनन्तर वह वेताली भयंकर शब्द करती हुई जब घर में आयी तब उसने शरीर शुद्धि की चिन्ता के लिये उठी हुई कनकश्री को देखा। पश्चात् कापालिक की आज्ञा का स्मरण कर तथा शुद्ध सम्यक्त्व तप और शील आदि गुणों से युक्त, देव और गुरु की भक्त जिनदत्ता का पराभव करने में अपने आपको असमर्थ जानकर उस विद्या ने प्रमाद युक्त कनकश्री को तलवार से मार डाला और खून से लिप्त शरीर को धारण करने वाली वह विद्या श्मशान में कापालिक के आगे आकर खड़ी हो गयी। योगी ने उसका विसर्जन किया जिससे वह अपने स्थान पर चली गयी। कापालिक भी अपने स्थान पर चला गया। ठीक है होनहार का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। जैसा कि कहा है-

जिनके गर्भ में आने के छह माह पहले से इन्द्र किंकर के समान हाथ जोड़े फिरता था, जो स्वयं सृष्टि के सृष्टा थे और जिनका पुत्र भरत निधियों का स्वामी था वे भगवान् वृषभदेव भी क्षुधातुर होकर लगातार छह माह तक पृथ्वी पर भ्रमण करते रहे सो ठीक है क्योंकि दुष्ट विधि दुर्दैव की चेष्टा का उल्लंघन इस जगत् में कोई नहीं कर सकता॥२३९॥

प्रातःकाल संतुष्टचित्त से युक्त बन्धुश्री अपनी पुत्री के पास गयी। शय्या पर खण्डित शरीर वाली पुत्री को देखकर रोती हुई राजा के पास गयी। राजा ने उससे पूछा कि हे भद्रे ! तुम इस प्रकार क्यों रो रही हो ? उसने कहा—हे देव ! मेरी पुत्री कनकश्री को उसकी सौत जिनदत्ता ने मार डाला है। यह बात सुनकर राजा ने कुपित होकर दम्पती को पकड़ने और घर की रक्षा करने के लिये सैनिक भेजे। परन्तु वे सभी सैनिक पुण्य देवी के द्वारा कील दिये गये। मन्दिर जाने वाले स्त्री पुरुषों से यह वृत्तान्त सुनकर जिनदत्ता ने कहा-कि उपार्जित कर्म किसी के द्वारा नहीं लाँघे जा सकते।

जैसा कि कहा है-

जिस देश में, जिस काल में, जिस मुहूर्त में और जिस दिन में जो हानि, वृद्धि, यश तथा लाभ लिखा है वह अन्यथा नहीं होता॥२४०॥

कायोत्सर्ग को पूराकर वह विचार करने लगी कि अहो ! यह कलंक मेरे लिये ही आया है। पूर्वभव में जो किया वह अन्यथा नहीं हो सकता।

ऐसा विचार कर उसने उपसर्ग दूर करने के लिये शासन देवी के निमित्त फिर से कायोत्सर्ग किया। तथा दोनों प्रकार का सन्यास लेकर वह मन्दिर में खड़ी हो गयी। उसके कायोत्सर्ग से आकृष्ट होकर शासन देवी ने कहा कि हे बेटी ! तुम स्थिर रहो, तुम्हारा उपसर्ग विलीन हो जायगा और श्री जैनधर्म की प्रभावना होगी ऐसा मानकर तुम धर्मध्यान में तत्पर रहती हुई स्थिर रहो। ऐंसा कहकर शासन देवी चली गयी। जिनदत्ता भी नमस्कार मन्त्र का बार-बार उच्चारण करती हुई समाधि लेकर खड़ी रही।

इधर यह हो रहा था उधर शासन देवी के द्वारा प्रेरित योगी नगर के मध्य कह रहा था कि हे नगरवासी लोगों ! सुनो, बन्धुश्री ने आग्रह कर मेरे द्वारा प्रेरित वेताली विद्या के द्वारा अपनी पुत्री को मरवा डाला है-ऐसा निश्चय करना चाहिये। कनकश्री मात्सर्य से सहित तथा दुष्ट अभिप्राय से युक्त थी, इसलिये मार डाली गयी है, इस विषय में विकल्प नहीं करना चाहिये। देवता और योगी के वचन सुनकर राजा तथा लोगों ने कहा-जिनदत्ता निरपराध साध्वी स्त्री है। तदनन्तर शासन देवी ने सुवर्ण रत्न तथा वस्त्र आदि के द्वारा जिनदत्ता की पूजा की तथा उसका जय जयकार किया। सब लोगों से शुद्धता की बात कही। इसी अवसर पर देवों ने नगर के मध्य पञ्चाश्चर्य किये। यह सब देखकर राजा ने कहा—बन्धुश्री दुष्टा है अतः उसे गधे पर चढ़ाकर निकाल देना चाहिये। बन्धुश्री ने कहा—मैंने अज्ञान से ऐसा किया है मुझे प्रायश्चित्त दिलाया जावे। राजा ने कहा - इस दोष का प्रायश्चित कहीं सुना नहीं है।

जैसा कि कहा है—

मित्रद्रोही, कृतघ्नी, स्त्री की हत्या करने वाला और चुगलखोर इन चारों का प्रायश्चित्त हमने नहीं सुना है॥२४१॥

तदनन्तर बन्धुश्री निकाल दी गयी। उसने कहा—अहो ! अत्यधिक पुण्य और पाप का फल इसी लोक में शीघ्र ही दिख जाता है।

जैसा कि कहा है—तीन वर्ष, तीन माह, तीन पक्ष अथवा तीन दिन में अत्यन्त उग्र पुण्य और पाप का फल इसी लोक में प्राप्त हो जाता है॥२४२॥

इस बन्धुश्री ने अत्यन्त उग्र पाप का फल तत्काल देख लिया, ऐसा सभासदों ने कहा।

तदनन्तर राजा ने मन में विचार किया—श्री जैनधर्म को छोड़कर अन्य

धर्म की इतनी महिमा दिखाई नहीं देती। ऐसा निश्चय कर वह जिन मन्दिर में गया और समाधिगुप्त मुनि तथा सेठ और सेठानी को नमस्कार कर बैठ गया।

तदनन्तर राजा ने कहा-हे मुनिराज ! आज धर्म के द्वारा इन दम्पतियों-सेठ और सेठानी का उपसर्ग दूर हुआ है। मुनिराज ने कहा—हे राजन् ! जो कुछ इष्ट है वह सब धर्म से प्राप्त होता है। मुनिराज ने फिर भी कहा—हे राजन् ! इस संसार में धर्म को छोड़कर सभी कुछ अनित्य है अतएव धर्म को धारण करना चाहिये।

जैसा कि कहा है—

उत्तम कुल में जन्म, नाना प्रकार की विभूति, प्रियजनों के समागम से होने वाली सुख की परम्परा, राजवंश में गौरव और निर्मल यश.... ऐसा धर्मरूपी वृक्ष का फल होता है॥२४३॥ और भी कहा है-

धन पैर की धूली के समान है, यौवन पहाड़ी नदी के वेग के तुल्य है, मनुष्य पर्याय पानी की बूँद के समान चंचल है और जीवन फेन के सदृश है...ऐसा जानकर जो दृढ़ बुद्धि होता हुआ स्वर्ग के आगल को खोलने वाला धर्म नहीं करता है वह मूढ़ है, मिथ्यादृष्टि है एवं दीर्घ संसारी है॥२४४॥

तदनन्तर राजा ने पूछा-हे भगवन्! वह धर्म किस प्रकार का है ? पश्चात् मुनिराज ने कहा-हिंसादि से रहित है ? जैसा कि कहा है-

हे भव्य ! यदि तुझे सुख की इच्छा है तो प्राणियों की हिंसा मत कर, पुण्य को धारण करने वाली सत्य वाणी बोल, चोरी का सर्वथा त्याग कर, आदरपूर्वक परस्त्री का संग छोड़, इष्ट सामग्री में इच्छा का परिमाण कर, क्रोधादि दोषों का त्याग कर और जैनमत में अत्यधिक प्रीति कर॥२४५॥

तदनन्तर संग्रामशूर राजा ने अपने पुत्र सिंहशूर के लिये राज्य देकर समाधिगुप्त आचार्य के पास दीक्षा ले ली। वृषभदास सेठ ने विरक्तचित्त अन्य अनेक लोगों के साथ अपने अपने पदों पर अपने पुत्रों को रख दीक्षा ग्रहण कर ली। रानी कनकमाला, जिनदत्ता सेठानी तथा अन्य अनेक स्त्रियों ने जिनमति आर्यिका के समीप दीक्षा ले ली। कोई सम्यग्दर्शन में, कोई श्रावक के व्रत में स्थित हुए और कोई भद्र परिणामी हुये। मुनि ने कहा हे पुत्र। तुमने अच्छा किया, सब वस्तुओं में भय है, एक वैराग्य ही भय रहित है जिसे आपने ग्रहण किया है। जैसा कि कहा है—भोग में रोग का भय है, सुख में क्षय का भय है, धन में अग्नि और राजा का भय है, दास में स्वामी का भय है, विजय में शत्रु का भय है, कुल में कुलटा स्त्री का भय है, मान में मलिनता आने का भय है और शरीर में यमराज मृत्यु का भय है परन्तु

आश्चर्य है कि यह वैराग्य अभय है-भय से रहित है॥२४६॥

वैराग्य से बढ़कर भाग्य नहीं है।

तदनन्तर मित्रश्री ने कहा—हे स्वामिन् ! श्री जिनधर्म का यह फल मैंने प्रत्यक्ष देखा, अनुभव किया और सुना है। इसलिये मुझे अत्यन्त दृढ़ सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है। अर्हद्दास सेठ ने कहा—हे प्रिये ! तुमने जो देखा है मैं उसकी श्रद्धा करता हूँ, उसकी इच्छा करता हूँ, और उसकी रुचि करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा।

तदनन्तर कुन्दलता ने कहा -यह सब असत्य है। यह सब सुन राजा, मन्त्री और चोर ने अपने मन में कहा-यह पापनी सत्य को असत्य क्यों कहती है ? प्रात:काल इसका दण्ड करूँगा। प्रात:काल इसे गधे पर चढ़ाकर निकालना चाहिये। चोर ने फिर भी अपने मन में विचार किया-कहो ! इस लोक में दुर्जन गुण को छोड़कर दोष को ग्रहण करता है। यह कहावत सत्य है। जैसा कि कहा है—

निर्गुण मनुष्य दोष को ग्रहण करता है गुण को नहीं, क्योंकि स्तन पर लगी हुई जोंक रक्त ही ग्रहण करती है दूध नहीं॥२४७॥

दुर्जन मनुष्य यत्नपूर्वक दोषों को ग्रहण करते हैं और गुणों को दूर से ही छोड़ते हैं। ठीक ही है क्योंकि दुर्जन मनुष्य चालनी के समान दोषों को ग्रहण करता है और गुणों का त्याग करता है॥२४८॥

दुष्ट मनुष्य रूपी जवासे के पौधे दूसरों के सन्ताप से हर्षित होते हैं क्योंकि वे ग्रीष्म काल में नवीन पल्लवों से युक्त होते हैं॥२४९॥

तदनन्तर सेठ ने कुन्दलता से कहा-हे कुन्दलते ! तुम भी ऐसा धर्म का फल सुनकर संदेह छोड़ो तथा नृत्यादिक करो।

जैसा कि कहा है—

श्री सर्वज्ञ भगवान् के चरणों की पूजा, गुणीजनों में प्रीति, गुरु में नम्रता, बन्धुजनों में मित्रता, दु:खीजनों पर दया, सिद्धान्त के रहस्य को सुनना, पात्र में दान देना, कषायों को जीतना, साधर्मी भाइयों में आश्चर्यकारक वात्सल्यभाव धारण करना और निरन्तर परोपकार करना.... ये सब आपको सदा करना चाहिये॥२५०॥

इस प्रकार द्वितीय कथा पूर्ण हुई।

३. सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली चन्दनश्री की कथा

तदनन्तर सेठ ने चन्दनश्री से कहा—हे भार्ये ! तुम भी अपने सम्यक्त्व का कारण कहो। पश्चात् वह कहने लगी।

कुरूजाङ्गल देश के हस्तिनापुर में राजा भूभोग रहते थे, उनकी रानी का नाम भोगवती था। वहीं राजसेठ गुणपाल था जो परम धार्मिक और अत्यधिक सम्यग्दृष्टि था। उसकी स्त्री का नाम गुणवती था। उसी नगर में सोमदत्त नामका एक अत्यन्त दरिद्र ब्राह्मण रहता था। उसकी स्त्री का नाम सोमिल्ला था जो अत्यन्त पतिव्रता थी। उन दोनों के सोमा नामकी पुत्री थी। एक समय ज्वर से पीड़ित होकर सोमिल्ला मर गयी। उसके शोक से सोमदत्त बहुत दु:खी हुआ। शोकरूपी अग्नि से अत्यन्त दग्ध होता हुआ वह कहीं भी प्रीति को प्राप्त नहीं होता था। एक समय वह रोता हुआ वन में बैठा था कि किन्हीं मुनिराज ने उसे देख लिया तथा उससे कहा—हे पुत्र ! किसलिये दु:ख करते हो ? उसने दु:ख का कारण कह दिया, मुनिराज ने फिर कहा—अरे पुत्र ! जो जीव उत्पन्न होता है उसका मरण तो निश्चित ही होता है इसलिये बहुत भारी प्रयत्न करने पर भी यह पापी काल उसे कवलित कर ही लेता है। बातचीत के प्रसङ्ग में मुनिराज ने फिर कहा-हे पुत्र ! तुझे इस लोक तथा परलोक में धर्म ही हितकारी है अन्य नहीं।

जैसा कि कहा है—

धर्म से परभव में देव गति प्राप्त होती है। शुभ शुक्लध्यान प्राप्त होता है और शुक्लध्यान से संसार का क्षय होता है। इसलिये ज्ञानी जन को उस उत्कृष्ट शुक्लध्यान के विषय में यत्न करना चाहिये और सदा उसी की सेवा करना चाहिये, जो कि व्याधि रूपी रोग को नष्ट करने वाला है, हितकारी है, संसार से निस्तरण करने वाला है, संसार को नष्ट करने वाला है और मोक्ष के द्वार पर लगे हुए कपाटों को तोड़ने वाला है॥२५१॥

और भी कहा है-

धर्म से अच्छे कुल में जन्म होता है, शरीर में सामर्थ्य रहती है, सौभाग्य, आयु और धन प्राप्त होता है। निर्मल यश, विद्या, धन-संपत्ति और लक्ष्मी धर्म से ही प्राप्त होती है। वन से तथा महासागर से धर्म ही रक्षा करता है, वास्तव में अच्छी तरह उपासना किया हुआ धर्म स्वर्ग और मोक्ष को देने वाला है॥२५२॥

इस प्रकार मुनि के वचन सुनकर उसने शोक छोड़ दिया तथा उपशम भाव को प्राप्त होकर श्रावक हो गया। वह यथाशक्ति दान भी करने लगा। जैसा कि कहा है-

थोड़ी वस्तु भी दान के योग्य होती है, दान के विषय में महान् अभ्युदय की अपेक्षा नहीं करनी पड़ती है क्योंकि इच्छानुसार शक्ति कब और किसके होगी ? ॥२५३॥

इस प्रकार वह अपना समय व्यतीत करने लगा। एक दिन उस गुणपाल

सेठ ने 'यह श्रावक दरिद्र है' यह जान अपने घर ले जाकर उसका सम्मान किया। वह सेठ उसका सब प्रकार से निर्वाह करता था। ऐसा कहा भी है-महापुरूषों की संगति से गुणवान् और पूज्य कौन नहीं होता है ? कहा भी है-

गुण, गुणों के जानने वालों के पास गुण होते है और निर्गुण के पास जाकर वे गुण दोष हो जाते है जैसे नदियाँ अत्यन्त मधुर जल को धारण करती हैं परन्तु समुद्र को प्राप्त कर वे ही नदियाँ अपेय हो जाती हैं अर्थात् खारी हो जाने से उनका पानी पीने योग्य नहीं रहता है॥२५४॥

और भी कहा है-

गुणी मनुष्य के पास रहने वाला गुणहीन मनुष्य भी लोक में पूज्य हो जाता है। जैसे निर्मल नेत्र का संसर्ग पाकर अंजन सुन्दरता को प्राप्त हो जाता है ॥२५५॥

महापुरुषों की संगति किसकी उन्नति का कारण नहीं है ? अर्थात् सभी की उन्नति का कारण है क्योंकि गंङ्गा में प्रविष्ट हुआ गलियों का पानी देवों के द्वारा भी वन्दनीय हो जाता है ॥२५६॥

एक समय रोग से पीड़ित सोमदत्त ने अपना मरण निकट जानकर गुणपाल सेठ को बुलाकर कहा– हे सेठ जी ! आपकी सहायता से मुझे कुछ भी दुःख का अनुभव नहीं हुआ, श्रावक धर्म की अच्छी तरह आराधना की परन्तु इस समय परलोक को जाते हुए मुझे एक चिन्ता है। वह यह है कि बेटी सोमा श्रावक ब्राह्मण को छोड़कर अन्य को नहीं दी जाये। ऐसा कहकर अपनी पुत्री को गुणपाल के हाथों में देकर वह स्वयं संयम पूर्वक मर गया और मर कर स्वर्ग को गया। कहा भी है–

विद्या, तप, धन, शूरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष- सब कुछ धर्म से प्राप्त होता है ॥२५७॥

गुणपाल सोमा का अपनी पुत्री के समान पालन करने लगा। तदनन्तर उसी नगर में रूद्रदत्त नामका धूर्त ब्राह्मण रहता था। जैसा कि धूर्त का लक्षण कहा गया है–

जिसका मुख कमल की कलिका के आकार का है, वचन चन्दन के समान शीतल है और हृदय कैंची से संयुक्त है, वह धूर्त है, यह तीन प्रकार से धूर्त का लक्षण है॥२५८॥

वह प्रतिदिन जुआ खेलता था। एक दिन वह सोमा क्रीड़ा के लिये मार्ग में जा रही थी कि जुवारियों ने उसे देख लिया। रूद्रदत्त ने उन जुवारियों से पूछा कि यह किसकी पुत्री है ? उन्होंने कहा कि सोमदत्त की पुत्री है पिता ने मरण काल में गुणपाल के हाथ में दी थी। वह पुण्यशाली गुणपाल, अपनी पुत्री के समान इस कुमारी का

पालन करता है। जुवारियों के वचन सुनकर रूद्रदत्त कहने लगा कि मैं इससे विवाह करूँगा। उन्होंने कहा–अरे अज्ञान से असंबद्ध बात क्यों बोलता है ? दीक्षित आदि ब्राह्मणों ने विवाह करने के लिए इसकी याचना की है परन्तु सेठ जैन ब्राह्मण को छोड़कर अन्य को नहीं देता है। तू तो जुवारियों का शिरमौर सर्वश्रेष्ठ जुवारी है अत: तेरे द्वारा कैसे प्राप्त की जा सकती है ? तदनन्तर उसके वचन सुन रूद्रदत्त ने बड़े अभिमान से कहा, अहो ! मेरी बुद्धि की कुशलता को देखो। यदि मैं इसे न विवाहूँ तो पशुओं के बीच मेरी गिनती करना। इस प्रकार की प्रतिज्ञा कर वह अन्य देश को चला गया। वहाँ वह किसी मुनि के पास माया रूप से ब्रह्मचारी हो गया। देव वन्दना आदि की क्रिया को पढ़कर वह पुन: उसी नगर में वापिस लौट आया और गुणपाल के द्वारा निर्मापित चैत्यालय में ठहर गया। उसका आगमन सुन गुणपाल चैत्यालय आया और ब्रह्मचारी को इच्छकार करके बैठ गया। ब्रह्मचारी ने 'दर्शन विशुद्धि हो' यह आशीर्वाद दिया। सेठ ने कहा–यह धन्य है, इसके दिन धर्म ध्यान से व्यतीत होते हैं। सेठ ने पूछा हे प्रभो ! आपकी जन्मभूमि कहाँ है किसके शिष्य हैं और कहाँ से आये हैं ? ब्रह्मचारी ने कहा कि मैं आठ उपवास करने वाले जिनचन्द्र भट्टारक का शिष्य हूँ तथा तीर्थंकर भगवान के पंचकल्याणकों के स्थानों की वन्दना कर इस समय शान्ति, कुन्थु और अरहनाथ भगवान की वन्दना के लिये आया हूँ। सेठ–ने कहा–यह धन्य है, इसके दिन धर्म ध्यान से जाते हैं। जैसा कि कहा है–

जो देवों की पूजा करता है, दया करता है, सत्यवचन बोलता है, सज्जनों की संगति को छोड़ता है, दान देता है, और गर्व को छोड़ता है, इस प्रकार जिसके दिन व्यतीत होते हैं उसी के जन्म, जीवन और कुल को हम धन्य मानते हैं और उसी के द्वारा यह पृथ्वी सुशोभित है॥२५९॥

गुणपाल ने उस ब्रह्मचारी से पुन: पूछा–हे प्रभो ! आपकी जन्मभूमि कहाँ है? उसने कहा–इसी नगर में सोम शर्मा ब्राह्मण रहता था, उसकी स्त्री का नाम सोमिल्ला था। मैं उन दोनों का पुत्र रूद्रदत्त हूँ , पिता व माता की मरणावस्था देखकर शोक से तीर्थयात्रा के लिये चला गया था। वाराणसी में जिनचन्द्र भट्टारक ने संबोधित कर मुझे ब्रह्मचारी बना दिया। अब मुझे गोत्र से तथा देश से क्या प्रयोजन है ? कुल तथा गोत्र वंश से क्या मतलब है, संसार में किसकी कौन वस्तु नित्य है ? अर्थात् कोई भी नहीं। इसलिये मेरा धर्म ही शरण है जिससे कि सब पदार्थों की सिद्धि होती है। जैसा कि कहा है–

यह धर्म, धन के प्रेमी मनुष्यों को धन देने वाला है, काम के इच्छुक मनुष्यों को काम देने वाला है, सौभाग्य के अभिलाषी मनुष्यों को सौभाग्य देने वाला

है और क्या, पुत्र के चाहने वालों को पुत्र देने वाला है, राज्यार्थियों को राज्य देने वाला है, अथवा अनेक विकल्पों से क्या प्रयोजन है ? वह कौन सी वस्तु है जो मनुष्य के लिये नहीं देता है ? अर्थात् सभी वस्तुओं को देता है। प्रमुख बात यह है कि धर्म, स्वर्ग और मोक्ष को भी देता है॥२६०॥

बहुत प्रकार से प्रशंसा कर सेठ ने फिर भी कहा-हे ब्रह्मचारी जी! आपने ब्रह्मचर्य व्रत कुछ अवधि के साथ लिया है या बिना अवधि का? उसने कहा-अवधि के साथ लिया है परन्तु स्त्रियों के ऊपर मेरी इच्छा नहीं है क्यों स्त्रियाँ विषम विष हैं।

जैसा कि कहा-कण्ठ में स्थित कालकूट भी जिस शम्भु का कुछ भी नहीं कर सका वे शम्भु भी स्त्रियों द्वारा अत्यधिक बाधा को प्राप्त हुए हैं, यह ठीक ही है क्योंकि स्त्रियाँ विषम विष हैं॥२६१॥

स्त्री के द्वारा पैर ताडित हुआ अशोक वृक्ष विकसित हो जाता है, मुख की मदिरा से सींचा गया बकुल का वृक्ष शोक छोड़ देता है, आलिंग्न को प्राप्त हुआ कुरवक खिल उठता है और देखा हुआ तिलक वृक्ष कलिकाओं से युक्त हो जाता है॥२६२॥

सत्यता, शुद्धता, शास्त्र ज्ञान, धन, सुख, और लोक प्रतिष्ठा, मनुष्यों की इतनी वस्तुएँ स्त्रियों के प्रसङ्ग से नष्ट हो जाती हैं॥२६३॥

सेठ ने कहा-हे विभो ! मेरे घर ब्राह्मण की पुत्री है, उससे आप विवाह कर लीजिये, श्रावक जानकर आपके लिये देता हूँ। सेठ के वचन सुनकर उसने कहा-विवाह से संसार में पतन होता है इसलिए मुझे विवाह से प्रयोजन नहीं है। दूसरी बात यह है कि स्त्री के समागम से मेरे द्वारा अभ्यस्त शास्त्र भी चला जाता है।-नष्ट हो जाता है।

जैसा कि कहा गया है-

स्त्रियों की सेवा में वशीकरण, अञ्जन, तन्त्र और अनेक प्रकार के मन्त्र तथा यन्त्र सभी कुछ व्यर्थ हो जाते हैं॥२६४॥

तदनन्तर सेठ ने बहुत भारी आग्रह के साथ पुत्री का विवाह कर दिया। विवाह के बाद दूसरे दिन हाथ में कंकण बाँधे हुए रूद्रदत्त जुवारियों के स्थान पर गया और जुवारियों के आगे कहने लगा-अरे जुवारियों ! मैंने सोमा के साथ विवाह करने की जो प्रतिज्ञा की थी वह बुद्धि बल से पूर्ण हो गयी है। यह सुनकर जुवारियों ने रूद्रदत्त की प्रशंसा की।

तदनन्तर वह, अपनी पहले वाली स्त्री कामलता वेश्या, जो कि वसुमित्रा वेश्या की पुत्री थी, के घर फिर से रहने लगा। रूद्रदत का हाल सुन व देखकर

लज्जित सोमा ने विचार किया - अहो ! मेरे कर्मों का यह स्वभाव है, जो उपार्जित किया है वह कैसे जा सकता है ? यह सब समाचार सुनकर सेठ ने सोमा के आगे कहा-हे पुत्रि ! विरोध मत करो, यह कलियुग का स्वभाव है। जैसा कि कहा है-

जो होने वाला है वह निरन्तर बिना प्रयत्न के भी होता है और जो नहीं होने वाला है। वह बहुत भारी प्रयत्न से भी नहीं होता है। इस प्रकार जब प्राणियों का संसार विधाता के वशीभूत होकर चल रहा है तब विवेकी जन को क्या शोक करना है? ॥२६५॥

निश्चय से चन्द्रमा में कलंक होता है, पुष्प राज के साथ में काँटे होते हैं, समुद्र का जल अपेय होता है, पण्डित जन में निर्धनता होती है, प्रियजन का वियोग होता है, सुन्दर रूप में सौभाग्य होता है, धनाढ्य में कृपणता होती है, और रत्न में भी दोष उत्पन्न करने वाला दुर्दैव होता है॥२६६॥ वेश्याव्यसन में आसक्त मनुष्यों की सच्ची प्रवृत्ति होना दुर्लभ है।

जैसा कि कहा गया है-

विटमनुष्य- सत्य, शौच, शील, संयम, और नियम का भार छोड़कर वेश्या स्त्री के घर में प्रवेश करते हैं॥२६७॥

जिसप्रकार कुठार के द्वारा लता छिद जाती है उसी प्रकार वेश्या के द्वारा तप, व्रत, विद्या, कुलीनता, दम और दया शीघ्र छिद जाते हैं-नष्ट हो जाते हैं॥२६८॥

फिर भी कहा है-

बड़े बड़े पुरुषों के भी अच्छे कार्य अनेक विघ्नों से युक्त होते हैं और खोटे कार्य में प्रवृत्ति करने वाले पुरुषों के गणेश कहीं चले जाते है अर्थात् उनके कार्य में विघ्न नहीं आते हैं॥।२६९॥

सोमा ने कहा-हे पिताजी ! मेरे मन में कुछ भी नहीं है। जुवारी का यह स्वभाव है ! जैसा कि कहा है-

चोर में सदा सत्य नहीं रहता, शूद्रा स्त्री के पति में पवित्रता नहीं होती, मदिरा पीने वाले में मित्रता नहीं होती और जुवारी में तीनों नहीं रहते॥२७०॥

दूसरी बात यह है कि पिताजी ! मैं कलियुग के स्वभाव को जानती हूँ।

जैसा कि कहा गया है-

असत्य बोलने में चतुराई, चोरी में बुद्धि, सत्पुरुषों का भी अपमान करना, अविनय में बुद्धि रखना, धर्म के विरुद्ध चलना, गुरुओं से छल करना, सामने सुन्दर

और मीठी बात करना तथा पीछे विघात करना, ये सब कलियुग रूपी महाराज की विभूतियाँ हैं॥२७१॥

इस समय कलिकाल चल रहा है, कलियुग में सत्य मनुष्य दुर्लभ हैं, अनेक चोरों के समूह पृथ्वी को लूट रहे हैं, आर्य मनुष्य नष्ट हो रहे हैं, प्रदेश करों के भार से नष्ट हो गये हैं, राजा विषय लम्पट और तृष्णा से युक्त हो गये है, पिता पुत्र का विश्वास नहीं करता है, सचमुच ही जगत अत्यन्त कष्टमय हो रहा है॥२७२॥

और भी कहा है-यह कुलीन तथा गुणवान् है ऐसा समझकर दुर्जनों का भी विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि मलयागिरि चन्दन में भी उठी अग्नि जलाती ही है॥२७३॥

ये अत्यन्त स्नेही हैं, ऐसा समझकर क्षुद्र मनुष्यों में विश्वास मत करो, क्योंकि इन सिद्धार्थों-कृतकार्यों पक्ष में सरसों का स्नेह-प्रेम पक्ष में तेल भी आँसू गिरा देता है॥२७४॥

यह सीधा है और पक्षवान्—पंखों से युक्त अनेक सहायकों से युक्त है, ऐसा समझकर बाण में तथा दुर्जन में प्रीति मत करो क्योंकि प्राय: सरलता रूप गुण से युक्त बाण और मनुष्य, फल -अग्रभाग और कार्य सिद्धि के द्वारा हृदय को विदीर्ण कर देता है॥२७५॥

सेठ ने कहा-हे पुत्रि ! अज्ञान से जो मैंने किया है वह सब सहन करने योग्य है। ऐसा कहकर तथा बहुत भारी धन देकर उसने कहा-हे पुत्रि ! दान पूजा आदि करो जिससे उत्तम गति होती है। कहा भी है-

दान से गौरव प्राप्त होता है न कि धन के संग्रह से। देखो, दान देने वाले मेघों की स्थिति ऊँची है और संचय करने वाले समुद्रों की स्थिति नीची है अर्थात् दान के प्रभाव से मेघ ऊपर आकाश में रहते हैं और संचय के प्रभाव से समुद्र नीचे पृथ्वी पर पड़े हुए हैं॥२७६॥

यह दानी मनुष्य, त्याग और भोग के प्रभाव से जीवित रहता हुआ भी स्वर्गीय जैसे सुख को भोगने वाला है और मरकर भी स्वर्ग के सुख को भोगता है परन्तु हे पुत्रि ! कृपण मनुष्य भोग और दान से रहित होने के कारण नारकी होता है॥२७७॥

सैकड़ों प्रयासों से प्राप्त तथा प्राणों से भी गुरुतर धन की एक ही गति होती है—दान देना अथवा नष्ट होना॥२७८॥

कंजूस मनुष्य यह जानता है कि चक्रवर्ती आदि सभी मनुष्य इस धन को छोड़कर चले गये हैं फिर भी वह धन के लिये यत्न करता है॥२७९॥

और भी कहा है–

लक्ष्मी का फल दान है, शास्त्र पढ़ने का फल शान्ति धारण करना है, हाथ का फल देव पूजा है, धर्म का फल दूसरों की पीड़ा दूर करने में पुरुषार्थ करना है, जीवन का फल क्रीड़ा प्राप्त करना है, वाणी का फल सत्य बोलना है, और जगत का फल सुखोपभोग करना है, सम्पन्नता का फल प्रभाव को उत्पन्न करना है और भव्यजीवों की बुद्धिका फल संसार में शान्ति किस प्रकार हो, ऐसा विचार करना है, क्योंकि ऐसी बुद्धि ही विभूति के लिये होती है॥२८०॥

गुणपाल सेठ के द्वारा कहे हुए इन पूर्वोक्त वचनों को सुनकर सोमा ने उस धन से जिनमन्दिर बनवाया प्रतिष्ठा करवायी और प्रतिष्ठा के पश्चात् चौथे दिन यथायोग्य आदर के द्वारा चातुर्वर्ण संघ की पूजा की तथा सबको सम्मानित किया।

पश्चात् दूसरे दिन नगर के अन्य मनुष्यों, वसुमित्रा वेश्या, उसकी पुत्री कामलता तथा रूद्रदत्त आदि को भोजन के लिये निमन्त्रित किया और उन सब को भी सोमा ने यथायोग्य आदर से सम्मानित किया।

जैसा कि कहा है–

घर आये हुए शत्रु को भी सौम्यदृष्टि, मधुर वचन, उठकर खड़े होना, आसन तथा शक्ति के अनुसार भोजन और पान देना चाहिये॥२८१॥

सज्जन-गुणहीन जीवों पर भी दया करते हैं क्योंकि चन्द्रमा चाण्डाल के घर पर से चाँदनी को हटाता नहीं है॥२८२॥

सोमा के घर आयी हुई वसुमित्रा वेश्या ने सोमा का रूप देखकर अपना सिर धुना। वह विचार करने लगी-अहो ! सोमा ऐसी सुन्दरी है। यदि रूद्रदत्त किसी तरह इसमें आसक्त हो जायगा तो हम लोगों का जीवन कैसे चलेगा ? इसलिये किसी उपाय से अवश्य ही अपनी पुत्री की यह सौत मारने के योग्य है।

ऐसा निश्चय कर तथा घर आकर वसुमित्रा ने एक महान् भयंकर साँप बुलाया, उसे फूलों के साथ एक घड़े में रक्खा और सोमा के घर जाकर वह घड़ा सोमा के हाथ में दे दिया। साथ में कहा भी–हे पुत्री! इन फूलों से देवपूजा करना चाहिये। सोमा के पुण्य महात्म्य से साँप भी पुष्प माला हो गया। तदनन्तर भोली भाली सोमा ने देव पूजा की। यह आश्चर्य देख वसुमित्रा कुट्टिनी आश्चर्य को प्राप्त हुई कि मैंने घड़े में साँप रखा भी था या नहीं।

पश्चात् सोमा ने वसुमित्रा, कामलता और रूद्रदत्त इन तीनों को भोजन, वस्त्र तथा आभूषणों आदि से सम्मानित किया। तदनन्तर सोमा ने आशीर्वाद देकर

वह माला कामलता के कण्ठ में ड़ाल दी। परन्तु डालते ही वह माला साँप हो गई। साँप ने उसे कण्ठ में डस लिया जिससे वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। पश्चात् अपनी पुत्री की वैसी अवस्था देख वसुमित्रा कुट्टिनी ने रोकर माला और साँप को घड़े में रख राजा के आगे कहा-हे देव ! गुणपाल की पुत्री सोमा ने मेरी पुत्री कामलता को मार डाला है। पश्चात् राजा ने क्रुद्ध हो सोमा को बुलवाया।

सोमा राजा के पास गयी। राजा ने पूछा--रे दुष्टे ! तूने बिना कारण ही कामलता को क्यों मार डाला ? सोमा ने कहा-देव ! मैंने नहीं मारा। मैं जैनी हूँ, जैन धर्म दया से युक्त है, जीवों का घात करने से प्राणियों को नरकादि का दुःख होता है और जीवों की रक्षा करने से स्वर्गादि का सुख होता है। इसलिये सुख के इच्छुक मनुष्य को सूक्ष्म जीव का भी घात नहीं करना चाहिये, स्थूल जीव की तो बात ही क्या है?

जैसा कि कहा है-

पाप से दुःख और धर्म से सुख होता है, यह समस्त जनों में अत्यन्त प्रसिद्ध है इसलिये सुख के इच्छुक मनुष्य को पाप छोड़कर सदा धर्म का आचरण करना चाहिये॥२८३॥

तदनन्तर राजा ने पूछा कि यदि तूने नहीं मारा है तो क्या हुआ, सब सच कहो, पश्चात् सोमा ने पहले का समस्त वृत्तान्त राजा के आगे कह दिया। तदनन्तर राजा ने वसुमित्रा के मुख की ओर देखा। तब कुट्टिनी ने घड़े में रखा हुआ साँप राजा के आगे दिखा दिया। पश्चात् राजा ने सोमा के आगे कहा-रे वाचाले ! यह क्या है ? उसने कहा-हे प्रजापाल ! घड़े के भीतर पुष्प माला है न कि साँप । राजा ने कहा तो निकालो। उसने फूलों की माला निकाली और राजा आदि को दिखलायी। तदनन्तर राजा की आज्ञा से वही माला वसुमित्रा ने ली तो साँप बन गयी। जब सोमा उसे लेती तब पुष्पमाला हो जाती और जब कोई अन्य लोग लेते तो साँप बन जाती। इस प्रकार राजा आदि के मन में बड़ा चमत्कार हुआ। तदनन्तर राजा तथा अन्य सभासदों ने आग्रह कर कामलता वेश्या को जीवनदान देने के लिये सोमा से प्रार्थना की। इन सबके वचन सुनकर जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति कर समस्त सुर असुरों के नायक सर्व सुखदायक श्रीजिनेन्द्र देव को हृदय कमल में विराजमान कर उसने अपने हाथ से कामलता का शरीर छुआ, जिससे वह विष रहित होकर खड़ी हो गयी। ठीक ही है श्री जिनेन्द्र देव के स्तवन से क्या-क्या सिद्ध नहीं होता है ? जैसा कि कहा है—

जिनेन्द्र भगवान् की स्तुति करने पर विघ्नों के समूह, शाकिनी, भूत और सर्पादि के विष जन्य सर्व दुःख नष्ट हो जाते हैं तथा विष निर्विषता को प्राप्त हो जाता है॥२८४॥

तदनन्तर कामलता को विष रहित देख, आश्चर्य से परिपूर्ण राजा ने अभय दान देकर वसुमित्रा कुट्टिनी से पूछा-यह क्या है ? मेरे आगे सत्य कहो। वसुमित्रा ने कहा- हे देव ! यह सब मेरी कुचेष्टा है, सोमा निर्दोष है, इस प्रकार उसने पहले का सभी समाचार राजा के आगे कह दिया। इस प्रकार धर्म का प्रभाव देखकर राजा ने, दर्शक मनुष्यों ने तथा देवों ने उस सोमा की पूजा की। इसके अतिरिक्त देवों ने पञ्चाश्चर्य किये। पश्चात् आश्चर्य से परिपूर्ण हृदय वाले लोगों ने कहा—अहो ! धर्म से क्या-क्या नहीं होता है ? तदनन्तर भूभोग राजा ने, गुणपाल ने तथा अन्य बहुत लोगों ने जिनचन्द्र भट्टारक के समीप तप ग्रहण कर लिया, कोई श्रावक हो गये, कोई भद्र परिणामी हो गये। रानी भोगावती ने, गुणपाल की स्त्री गुणवती ने, सोमा ने तथा अन्य अनेक स्त्रियों ने श्रीमती आर्यिका के समीप तप ग्रहण कर लिया। रुद्रदत्त, वसुमित्रा, और कामलता ने श्रावक का व्रत ग्रहण किया।

चन्दनश्री ने कहा-हे नाथ ! यह सभी धर्म का फल मैंने प्रत्यक्ष देखा है, उसी समय से मुझे सम्यक्त्व की प्राप्ति हुई है। तदनन्तर सेठ ने कहा—हे प्रिये ! तुमने जो देखा है, उसकी मैं श्रद्धा करता हूँ, रुचि करता हूँ और इच्छा करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा। सेठ ने कुन्दलता से कहा—हे कुन्दलते ! तुम भी धर्म में निश्चल हो, पूजा आदि करो। कुन्दलता ने कहा—यह सब वृत्तान्त असत्य है। उसके वचन सुन राजा और मन्त्री ने अपने मन में विचार किया कि अहो ! यह बड़ी पापिनी है, क्योंकि चन्दनश्री के द्वारा प्रत्यक्ष देखे हुए धर्म के फल को असत्य क्यों कह रही है ? प्रातः काल गधे पर चढ़ाकर इसे नगर से बाहर निकाल देंगे। चोर ने भी मन में कहा—यह निन्दक जन का स्वभाव है। जैसा कि कहा है—जो अविद्यमान दोष को कहता है तथा विद्यमान गुणों को ग्रहण करने में मूक रहता है वह पापी है और निन्दक है यश का वध करना प्राणों के वध से बड़ा है ॥२८५॥

दुर्जन मनुष्य का यह लक्षण है-

जो सुख उत्पन्न करने वाले मीठे वचन बोलता है परन्तु कार्य इससे विपरीत करता है, जो दुर्बुद्धि से युक्त हो साँप के समान मन से कभी कुटिलता को नहीं छोड़ता है, जो क्रोध से आकुलित हो दूसरे की विभूति को सहन नहीं करता है और न उनके गुण को जानता है उस लोक निन्दित की कौन बुद्धिमान सेवा करता है ? अर्थात् कोई नहीं ॥२८६॥

इस प्रकार तृतीय कथा पूर्ण हुई।

४. सम्यक्त्व प्राप्त विष्णुश्री की कथा

तदनन्तर अर्हद्दास ने विष्णुश्री से कहा-हे प्रिये! सम्यक्त्व प्राप्ति में कारण भूत कथा कहो। वह कहने लगी--

भरतक्षेत्र के वत्सदेश में कौशाम्बी नामक नगरी है उसके राजा का नाम अजितंजय, रानी का नाम सुप्रभा, राजमन्त्री का नाम सोमशर्मा और उसकी स्त्री का नाम सौमा था। वह सोमशर्मा मन्त्री सदा कुपात्रदान में तत्पर रहता था।

उसी कौशाम्बी नगरी में किसी समय समाधिगुप्त नामक भट्टारक आये। उन्होंने नगरी के बाहर स्थित उपवन के मध्य में मासोपवास की प्रतिज्ञा की। उस अतिशय से वह वन अत्यन्त सुशोभित हो गया। जैसा कि कहा है-

अशोक, कदम्ब, आम, मौलसिरी तथा खजूर आदि के जो वृक्ष पहले सूख गये थे, वे फूल, फल व कोपलों से युक्त हो गये तथा शाखा और उपशाखाओं से व्याप्त हो गये। जिनके कमल सूख गये थे ऐसी जलवापिका आदि जलाशय जल से परिपूर्ण हो गये, उनमें राजहंस पक्षी निरन्तर क्रीडा करने लगे और कोकिलाएँ सुन्दर शब्द करने लगीं ॥२८७॥

और भी कहा है--

चमेली, चम्पा, पारिजात, जपा, उत्तम केतकी, मालती तथा कमलिनी आदि क्षण भर में खिल उठे, उनकी सुन्दर सुगन्ध को सूँघकर भौंरे मधुर शब्द करने लगे और पक्षी परस्पर गाने लगे। इसप्रकार वह वन सुशोभित हो उठा॥२८८॥

वे तपस्वी भट्टाकर कैसे थे ?

पवित्र चित्त के धारक साधू परम दयालु होते हैं। अपकार करने पर भी वे सदा उपकार ही करते हैं॥२८९॥

साधु का लक्षण यह है-

शरीर में ममता का अभाव, गुरु में नम्रता, निरन्तर शास्त्र का अभ्यास, चारित्र की निर्मलता, अत्यन्त शान्तवृत्ति, संसार से उदासीनता अन्तर तथा बाह्य परिग्रह का त्याग, धर्मज्ञता और सज्जनता..... यह उत्तम साधु का लक्षण है और यह लक्षण उनके संसार का विच्छेद करने वाला है॥२९०॥

दश प्रकार का बाह्य परिग्रह इस प्रकार है-

खेत, मकान, धन, धान्य, दासी, दास आदि, द्विपद गाय, भैंस आदि, चतुष्पद, वाहन, शय्या-आसन, वस्त्र और वर्तन ये दश बाह्य परिग्रह हैं॥२९१॥

चौदह अंतरंग परिग्रह मिथ्यात्व, वेद, हास्यादि छह नोकषाय, क्रोधादि चार कषाय, राग और द्वेष ये चौदह अन्तरङ्ग परिग्रह हैं॥२९२॥

यही भाव प्राकृत गाथा में दरशाया गया है-मिथ्यात्व तीनवेद, हास्यादिक छह कषाय और क्रोधादिक की चौकड़ी, ये सब मिलकर चौदह अन्तरङ्ग परिग्रह हैं॥२९३॥

प्रतिज्ञा के अनन्तर अर्थात् मासोपवास की प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर इस प्रकार के गुणों से युक्त समाधिगुप्त भट्टारक चर्या के लिये नगर में आये। उन्हें देख, जिसके कर्म अत्यन्त अल्प रह गये थे, जो श्रद्धा आदि सात गुणों से सहित था, नवधा भक्ति से युक्त था और मुनिराज की प्राप्ति से अत्यधिक हर्षित हो रहा था ऐसे सोमशर्मा मन्त्री ने पड़िगाहन कर आहार कराया।

वे सात गुण कौन से हैं ? यह कहते हैं-

श्रद्धा, शक्ति, निर्लोभता, दया, भक्ति, क्षमा और विज्ञान ये दाता के सात गुण माने गये है॥२९४॥

और विधि क्या है ? यह कहते हैं-

पडिगाहना, उंच्च स्थान पर विराजमान करना, पैर धुलाना, पूजा करना, प्रणाम करना, मनशुद्धि, वचन शुद्धि और काय शुद्धि का प्रकट करना तथा आहार जल की शुद्धि को बताना यह नौ प्रकार की विधि है अर्थात् नवधा भक्ति है।२९५॥

तदनन्तर हाथ जोड़कर मन्त्री ने कहा कि हे मुनिराज! आज मैं धन्य हो गया। मैंने आज तीर्थंकर को देखा है और उनकी पूजा की। जैसा कि कहा है-

इस समय कलिकाल में तीन लोक के महान् रक्षक केवली भगवान् नहीं है, परन्तु भरत क्षेत्र में जगत् को प्रकाशित करने वाली उनकी उत्कृष्ट वाणी चल रही है। रत्नत्रय के धारक उत्तम मुनि उस वाणी के आधार भूत हैं अतः जिनेन्द्र भगवान् के वचनों के पूज्य होने से वे मुनि पूज्य हैं। उनकी पूजा करने से ऐसा जान पड़ता है मानों साक्षात् जिनेन्द्र भगवान् की ही पूजा की हो॥२९६॥

मन्त्री के महल में मुनि दान के फलस्वरुप देवों के द्वारा विरचित पञ्चाश्चर्य हुए। मुनिराज को दिये हुए आहारदान के फल का अतिशय देख मन्त्री मन में कहता है कि अहो ! वैष्णव धर्म में जो दान बतलाये गये हैं वे सब मैंने दीक्षित, अग्निहोत्री, श्रोत्रिय, वेदपाठी त्रिपठक शासन, धर्मकथक, भागवत, तपस्वी, वन्दक तथा योगीन्द्र आदि अनेक प्रकार से दिये हैं। जैसा कि कहा है-

सुवर्णदान, अश्वदान, तिलदान, हस्तिदान, रथदान, दासीदान, पृथ्वीदान,

गृहदान, कन्यादान, और कपिला गाय का दान ये दश महादान हैं॥२९७॥

परन्तु इन दानों के फल का कुछ भी अतिशय मैंने नहीं देखा है। इस प्रकार का मन में निश्चय कर, अपरान्ह समय में जब मुनिराज अपने स्थान पर आये तब उनके पास जाकर तथा विधिपूर्वक नमस्कार कर मन्त्री ने उनसे पूछा – हे भगवान् ! दीक्षित आदि को दिये हुए दान के फल का कुछ भी अतिशय मैंने नहीं देखा है, इसका क्या कारण है ? मुनिराज ने कहा कि हे मन्त्री ! वे दीक्षित आदि कुपात्र है, आर्त्त और रौद्र ध्यान से युक्त हैं अत: पात्र नहीं हैं, उन्हें दान नहीं देना चाहिये। जो अथिति अपने आपको तथा यजमान को तारता है उसे ही दान देना चाहिये।

जैसा कि कहा है-

जो पाप रहित मार्ग में स्वयं प्रवर्तता है और नि:स्पृह भाव से दूसरे को भी प्रवर्तति हैं आत्मकल्याण के इच्छुक मनुष्य के द्वारा वही गुरु आराधनीय है, ऐसा ही गुरु स्वयं तिरता है और दूसरों को तारने में समर्थ है॥२९८॥

और भी कहा है-

स्वर्ग और मोक्ष को प्राप्त करने के इच्छुक मनुष्य को शीलवन्त मुनियों के लिए प्रणाम कर दान देना चाहिये, बन्ध और मोक्ष को दिखलाने वाले ज्ञान को जानना चाहिये, तथा राग-द्वेष से रहित देवों की अच्छी तरह सेवा करनी चाहिये॥२९९॥

उत्तम पात्र, मध्यम पात्र और जघन्य पात्रों के लिये यथायोग्य औषध, अभय, आहार और शास्त्र दान देना चाहिये। जैसा कि कहा है-

उत्तम पात्र मुनि और मध्य पात्र श्रावक कहे गये हैं। अविरतसम्यग्दृष्टि जीवों को जघन्य पात्र जानना चाहिये ॥३००॥

और भी कहा है-

महाव्रत को धारण करने वाले मुनि उत्तम पात्र हैं, अणुव्रतो से सहित श्रावक मध्यम पात्र हैं और व्रत से रहित सम्यग्दृष्टि जघन्य पात्र हैं। सम्यग्दर्शन से रहित किन्तु व्रत समूह से युक्त मनुष्य कुपात्र हैं और सम्यग्दर्शन तथा व्रत-दोनों से रहित मनुष्य को अपात्र जानो ॥३०१॥

चतुर्विध दान का फल कहा भी है--

अभय दान देने से मनुष्य निर्भय होता है, आहार दान देने से भोग युक्त होता है, औषध दान देने से आरोग्य नीरोगता प्राप्त होती है और शास्त्र दान देने से श्रुतकेवली होता है॥३०२॥

और जो अपात्रों को दान देता है वह अपने आपको तथा पात्र को नष्ट करता है क्योंकि सोमदेव के नीति शास्त्र में कहा गया कि भस्म में किये हुए होम के समान अपात्रों में किया हुआ धन का व्यय व्यर्थ होता है।

और भी कहा है—जिस प्रकार साँप के लिये दिया हुआ दूध विप होता है उसी प्रकार जो दान अपात्र के लिये दिया जाता है वह विष हो जाता है॥३०३॥

जिस प्रकार ऊसर खेत में बोया हुआ बीज निष्फल होता है उसी प्रकार अपात्र के लिये दिया हुआ दान निष्फल होता है॥३०४॥

और भी कहा है—जिस प्रकार एक ही वापिका का जल ईख में मधुरता को प्राप्त होता है और नीम में कडुवापन को प्राप्त होता है उसी प्रकार पात्र और अपात्र में दिया दान विविध रूप को प्राप्त होता है॥३०५॥

यह सुनकर मन्त्री ने पुनः पूछा—हे भगवन् ! जिस प्रकार मुनि दान के फल का अतिशय मैंने प्राप्त किया है उस प्रकार किसी अन्य ने भी प्राप्त किया है या नहीं। तब भगवान्—मुनिराज बोले कि पहले विश्वभूति ब्राह्मण ने जैसा प्राप्त किया है उसे सुनो।

दक्षिण देश के वराड नगर में राजा सोमप्रभ रहते थे। उनकी रानी का नाम सोमप्रभा था। वह राजा ब्राह्मण भक्त था। वह नित्य ही सभा के मध्य बैठकर कहा करता था कि ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य कोई भी लोगों को तारने वाला नहीं है।

जैसा कि कहा है—गायों से, ब्राह्मणों से, वेदों से, पतिव्रता स्त्रियों से, सत्य बोलने वालों से, लोभ हीन मनुष्यों से तथा दानी पुरुषों से—इन सात के द्वारा पृथ्वी धारण की जाती है—ये सात पृथ्वी के रक्षक हैं॥३०६॥

एक समय उस राजा ने अपने मन में विचार किया कि अहो ? मैंने बहुत द्रव्य उपार्जित किया है। उस द्रव्य का दान आदि में उपयोग लिया जाता है अन्यथा उसका नाश ही होता है।

जैसा कि कहा है—दान, भोग और नाश, धन की ये तीन गतियाँ हैं जो न दान करता है और न भोगता है उसके धन की तीसरी गति—नाश होता है॥३०७॥

और भी कहा है—त्याग, भोग और विनाश, वैभव की ये तीन अवस्थाएँ होती हैं। जिस पुरुष के आदि की दो अवस्थाएँ नहीं हैं, उसके एक नाश अवस्था ही शेष रहती है॥३०८॥

ऐसा विचार कर ब्राह्मणों की अनुमति से उसने बहुसुवर्ण नामका यज्ञ करवाया,

उस यज्ञ के आदि, मध्य और अन्त में ब्राह्मणों के लिये बहुत सुवर्ण दिया जाता है।

यज्ञशाला के समीप ही विश्वभूति नामक ब्राह्मण का घर था। वह विश्वभूति भोग और उपभोग के विषय में यम, नियम रुप, संयम आदि से युक्त तथा निःस्पृह चित्त था। उसकी स्त्री पतिव्रता थी।

भोग और उपभोग स्वरुप ऐसा कहा है—

जो पदार्थ एक बार सेवन में आता है वह भोग कहलाता है जैसे भोजन आदि और जो बार-बार सेवन में आता है वह परिभोग कहलाता है जैसे आभूषण आदि॥३०९॥

यम और नियम का स्वरूप इस प्रकार है—

त्यागने योग्य वस्तु के विषय में यम और नियम के भेद से दो प्रकार का त्याग माना गया है। जीवन पर्यन्त के लिये जो त्याग होता है उसे यम जानना चाहिये और जो समय की अवधि से सहित होता है वह नियम कहा जाता है॥३१०॥

एक दिन वह विश्वभूति अनाज के स्थान स्वरूप खलियान में जाकर कपोतवृत्ति से अर्थात् दाने बीनकर जो लाया, उन्हें पिसवाकर उसके चूर्ण के, जल के साथ उसने चार पिण्ड बाँधे। एक पिण्ड से अग्नि का होम किया, दूसरा पिण्ड अपने भोजन के लिये रख लिया, तीसरा पिण्ड अपनी स्त्री के भोजन के लिये रख लिया और चौथा पिण्ड अतिथि के भोजन के लिये रखा। इस प्रकार विश्वभूति का समय व्यतीत हो रहा था।

जैसा कि कहा है—अपने समीप थोड़ी सम्पत्ति है तो उस थोड़ी सम्पत्ति में से भी थोड़ा भाग दान में देना चाहिये । महान् अभ्युदय-बहुत भारी सम्पत्ति की अपेक्षा नहीं करना चाहिये क्योंकि इच्छानुसार सम्पत्ति कब किसके होती है ? ॥३११॥

उस दिन विश्वभूति ब्राह्मण के घर पिहितास्रव नामक मुनिराज चर्या के लिये आये। परम आनन्द से युक्त उस विश्वभूति ने आगम में कही विधि से उन मुनिराज को पडिगाहा तथा अतिथि के निमित्त जो पिण्ड रख छोड़ा था वह शोधा, पश्चात् अपने लिये रक्खा हुआ भी शोधा, तदनन्तर ब्राह्मण ने अपनी स्त्री के मुख की ओर देखा। अभिप्राय को जानने वाली स्त्री ने कहा कि आपके प्रसाद से मैं धन्य हूँ मुझे भी पुण्य मिले, मेरे लिए पिण्ड रख छोड़ा है वह भी दिया जाये। ब्राह्मण ने वह पिण्ड भी शोध लिया।

जैसा कि कहा है-आज्ञाकारी पुत्र, आजीविका करने वाली विद्या, नीरोगता, सज्जनों की संगति और अनुकूल चलने वाली स्त्री ये पाँच दुःख को जड़ से नष्ट

करने वाले हैं॥३१२॥

तदनन्तर मुनि का निरन्तराय आहार हो गया। उस सुपात्र दान के प्रभाव से उस ब्राह्मण के घर तथा नगर में रत्नवृष्टि, पुष्पवृष्टि, सुगन्धित वायु, देवदुन्दुभि और उत्तम शब्द ये पञ्चाश्चर्य देवों ने किये। मुनिराज अपने स्थान पर चले गये। लोगों ने उस ब्राह्मण की बहुत प्रशंसा की। वे पञ्चाश्चर्य ये हैं—

देवों के द्वारा 'बहुत अच्छा-बहुत अच्छा' इस प्रकार के उत्तम शब्द का कहा जाना, गन्धोदक, रत्न और पुष्पों की वर्षा होना तथा दुन्दुभि का शब्द होना, ये पञ्चाश्चर्य जानना चाहिये॥३१३॥ पात्रदान से सुगन्धित वायु बहती है, पुष्प और रत्नों की वृष्टि होती है, देव दुन्दुभियों का शब्द होता है और अत्यन्त निर्मल साधु-साधु शब्द की ध्वनि होती है॥३१४॥

तदनन्तर मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणो ने राजा के आगे कहा—हे राजन् ! यह सब सुवर्ण यज्ञ का फल है। राजा सुनकर सन्तुष्ट हो गया। पश्चात् संतुष्ट हुए राजा ने ब्राह्मणों को आज्ञा दी- ब्राह्मणो ! तुम लोग ही रत्नादिक को ले लो। तदनन्तर हर्षित ब्राह्मण आकर ज्योंही ग्रहण करते हैं त्योंही रत्नादिक अङ्गार रूप और सर्पादि रूप हो गये। पश्चात् राजा ने स्वयं आकर देखा। जब राजा रत्नादिक को ग्रहण करता तब वे सर्प और अङ्गार रूप हो जाते और जब ग्रहण नहीं करता तब जैसे थे वैसे हो जाते थे। तदनन्तर किसी विशिष्ट पुरुष ने राजा के आगे कहा—हे राजन् ! यह बहुसुवर्ण यज्ञ का फल नहीं है, तो क्या है ? यह विश्वभूति ब्राह्मण के द्वारा मुनि के लिये दिये हुए आहारदान का फल है।

पश्चात् मुनि का दान माहात्म्य जानकर मन्द कर्मोदय वाले सोमप्रभ राजा ने ब्राह्मणों के आगे कहा—हे असत्य बोलने वाले ब्राह्मणों ! यह यज्ञ का फल नहीं है किन्तु सुपात्रदान का फल है यही निश्चय से जानना चाहिये। तदनन्तर अवसर पाकर जिनधर्म के अनुरागी मन्त्री ने कहा— हे राजन् ! जो शुद्ध भाव से युक्त हैं वे ही दान के योग्य होते हैं न कि आर्त्त और रौद्रध्यान में तत्पर रहने वाले गृहस्थ। क्योंकि उनके शुभ-भाव का अभाव रहता है। जैसा कि कहा—

गृहस्थ लोग शील पालन नहीं करते हैं, वे तप तपने में समर्थ नहीं हैं, तथा आर्त्तध्यान से उज्ज्वल बुद्धि को नष्ट करने वाले गृहस्थों के शुभ-भावना भी नहीं रहती है, इस प्रकार सावधान चित्त से अच्छी तरह विचार कर मैंने हर्ष पूर्वक यह निश्चय किया है कि दानरूप आलम्बन के सिवाय संसार रूपी कूप से निकालने वाला दूसरा सुदृढ़ साधन नहीं है॥३१५॥

इसलिये मुनियों को दान देना चाहिये, क्योंकि मुक्ति के कारण वे ही हैं, गृहस्थ नहीं। जैसा कि कहा है--

शरीर के रहते हुए सत्पुरुष, समस्त सुरेन्द्र और असुरेन्द्रों के द्वारा पूजित, मुक्ति के उत्कृष्ट कारण तथा तीनों लोकों को प्रकाशित करने वाले रत्नत्रय को धारण करते हैं। उस शरीर की वृत्ति उत्कृष्ट भक्तिपूर्वक दिये हुए जिन गृहस्थों के अन्न से होती है उन गुणवान् गृहस्थों का धर्म किसके लिये प्रिय नहीं है ? अर्थात् सभी के लिये प्रिय है॥३१६॥

तदनन्तर दोनों हाथ जोड़कर राजा विश्वभूति ब्राह्मण से कहता है कि पुण्यात्मन् विश्वभूति ! तुम मुनि को दिये हुए आहारदान का आधा फल मुझे दे दो और मेरे बहु-सुवर्ण यज्ञ का आधा फल ले लो। तब विश्वभूति ने कहा—हे राजन् ! जिस दान से स्वर्गादिक की सिद्धि होती है वह दान कैसे दिया जा सकता है। राजा ने कहा—तुम दरिद्र हो इसलिए मन चाहा धन लेकर मुनि को दिये हुए आहार दान का आधा फल दिया जा सकता है। उसने कहा—हे राजन् दारिद्रय से पीड़ित होने पर भी सत्पुरुष नीति को छोड़कर क्या अन्यथा काम करता है ? अर्थात् नहीं करता। जैसा कि कहा है--

मत्त गजराज के विदीर्ण किये हुए गण्डस्थल के ग्रास में जिसकी इच्छा लग रही है ऐसा अभिमानी जीवों में प्रधान सिंह भले ही भूख से दुर्बल हो रहा हो, प्यास से पीड़ित हो, प्रायः शिथिल हो गया हो, कष्टमय अवस्था को प्राप्त हो रहा हो, कान्ति हीन हो गया हो और प्राण नष्ट हो रहे हों तो भी क्या जीर्ण तृण को खाता है ? अर्थात् नहीं खाता है॥३१७॥

इसलिये स्वर्ग और मोक्ष के साधक आहार, अभय, औषध और शास्त्र ये चार दान धन के लिये नहीं बेचे जाते हैं ?

पश्चात् मुनिराज के पास जाकर राजा ने कहा—हे, भगवन् ! गृहस्थ द्वारा चार प्रकार के दान किस-लिये दिये जाते हैं ? मुनिराज ने कहा—हे राजन् ! आहारदान शरीर की स्थिति के लिये दिया जाता है अतएव आहार दान मुख्य है। जिसने आहारदान दिया उसने सब दान दिये। जैसा कि कहा है—

एक लाख घोड़े, गायों का समूह, पृथ्वी दान, सुवर्ण और चाँदी के पात्र, समुद्रान्त पृथ्वी और देवाङ्गनाओं के समान करोड़ों कन्याएँ, इन सबका जो दान दिया जाता है परन्तु वह अन्न दान के समान नहीं क्योंकि अन्नदान ही प्रधान है॥३१८॥

और भी कहा है—अन्नदान के समान दान, समता के समान तप, वीतराग

के समान देव और दया के समान धर्म नहीं है॥३१९॥

अन्नदान देने वाले के हाथ के नीचे तीर्थंकर भी अपना हाथ करते है अत: अन्नदान की उपमा किस दान से की जाये, कहो॥३२०॥

औषधदान भी देना चाहिये क्योंकि उससे रोग का अभाव होता है। उस औषधदान से रोग का नाश होने पर मुनि तप, जप और संयम करता है तथा पश्चात् कर्म क्षय कर मोक्ष को प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है-रोगी के लिये औषध देना चाहिये क्योंकि रोग शरीर को नष्ट करने वाला है, शरीर का नाश होने पर ज्ञान कैसे हो सकता है और ज्ञान के अभाव में निर्वाण नहीं होता है॥३२१॥ द्वारिका नगरी में श्रीकृष्ण ने एक मुनि के लिये औषधदान दिया था। उस औषधदान के फल से उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन किया था। अभयदान देना चाहिये। जो एक जीव की रक्षा करता है वह सदा निर्भय रहता है फिर जो सब जीवों की रक्षा करता है उसका कहना ही क्या हैं ? जैसा कि कहा है-

सब जीवों के लिये सदा अभयदान देना चाहिये क्योंकि अभयदान से जीव अन्य भव में निर्भय होता है॥३२२॥ और भी कहा है-

जो मेरूपर्वत के बराबर सुवर्ण अथवा संपूर्ण पृथिवी देता है और एक प्राणी को जीवनदान देता है, उसको उन दोनों में फल की समानता नहीं होती है॥३२३॥

जो गोदान, सुवर्णदान, भूमिदान और एक प्राणी को जीवनदान देता है फल की अपेक्षा उसके वे दान समान नहीं होते हैं॥३२४॥

इस विषय में यमपाल चाण्डाल और भवदेव धीवर की कथा प्रसिद्ध है। जो मनुष्य जीव दया को छोड़कर अपात्र के लिये दान देता है उसका वह दान साँप के मुख में डाले हुये दूध के समान निष्फल होता है।

शास्त्रदान भी देना चाहिये क्योंकि जो शास्त्रदान देता है वह सात तत्व, नौ पदार्थ, छहद्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सच्चे देव, सच्चे देव गुरु, सच्चे देव शास्त्र और लोकालोकादि के स्वरूप को जानता है तथा क्रम से कर्मों का क्षय करता है। जैसा कि कहा है-

चौथा शास्त्रदान, सब शास्त्रों में कहा गया है, जिसके द्वारा अज्ञानी पुरुष भी चराचर सहित तीनों लोकों को जान लेता है॥३२५॥

स्वयं लिखकर अथवा दूसरों से लिखवाकर साधुओं के लिये जो शास्त्र दिया जाता है अथवा स्वयं उसका व्याख्यान किया जाता है वह शास्त्रदान कहलाता है॥३२६॥

यह शास्त्र, ज्ञानरुपी अंकुरों की उत्पत्ति के लिये क्षेत्र है, अत्यन्त सघन अज्ञानान्धकार को नष्ट करने के लिये सूर्य बिम्ब है, आपत्ति रूपी संताप को नष्ट करने के लिए मेघ है, मिथ्यामत रूपी मैल से उत्पन्न होने वाली आसक्ति को नष्ट करने के लिए गंगा का प्रवाह है, मोक्ष लक्ष्मी को वश करने के लिए वशीकरण मन्त्र है, मोक्ष मार्ग के पथिक समूह के लिए अमृत का सदावर्त है, दुःख से पीड़ित मनुष्य रूपी कमलों को विकसित करने के लिए सूर्य है तथा जिनवाणी को प्रसारित करने वाली नहर है। यह शास्त्र सदा जयवंत रहे॥३२७॥

और भी कहा है-शास्त्रदान के फल से जीव, अन्य भव में समस्त श्रुत को धारण करता है, अर्थात् श्रुतकेवली होता है और शास्त्र दान के फल से मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करता है॥३२८॥

मुनियों के लिए उपर्युक्त चतुर्विधदान के सिवाय ज्ञान तथा संयम के उपकरण शास्त्र, पीछी, कमण्डलु आदि भी देना चाहिए। इस समस्त फल को देख और सुनकर सौमप्रभ राजा ने कहा-हे मुनिराज! मुझे जैनव्रत दीजिए। मुनि ने जैनव्रत दिये और उन्होंने स्वीकृत किए। उस समय जैन होकर राजा कहता है कि हे भगवन्! कैसा दान देने योग्य है? और किस-किस के लिए दान दिया जाना चाहिए।

जैसा कि कहा है-

धर्मात्मा पुरुषों को यश के लिए दान नहीं देना चाहिए, न भय से देना चाहिए, न प्रत्युपकार करने वाले के लिये, न नृत्य गान आदि करने वालों के लिए और न हँसाने वाले विदूषक आदि के लिये देना चाहिए अर्थात् ये दान के अपात्र हैं॥३२९॥

और भी कहा है-गृहस्थों को विधि के अनुसार, देश के अनुसार, अपनी शक्ति के अनुसार, आगम के अनुसार, पात्र के अनुसार, तथा समय-ऋतु के अनुसार दान देना चाहिये॥३३०॥

कैसा दान मुनियों को देना चाहिये। सुनो-जैसा कि कहा है-

जो विवर्ण हो-जिसका वर्ण बदल गया हो, विरस हो-जिसका स्वाद बदल गया हो, घुना हो, अहितकर हो, इधर-उधर फैला हो, और खाने पर रोग उत्पन्न करने वाला हो ऐसा अन्न मुनियों के लिए नहीं देना चाहिए॥३३१॥

जो जूंठा हो, नीच लोगों के योग्य हो, अन्य लोगों के उद्देश्य से बनाया गया हो, निन्दनीय हो, दुर्जनों के द्वारा छुआ गया हो तथा यक्ष आदि देवों के लिये संकल्पित हो। दूसरे गाँवों से लाया गया हो, मन्त्र द्वारा बुलाया गया हो, कहीं से भेंट में आया हो, बाजार से खरीदा हो, प्रकृति के विरूद्ध हो और ऋतु के अनुकूल न हो,

ऐसा आहार मुनियों के लिए नहीं देना चाहिये ॥३३२-३३३॥

जो बालक हैं, कठिन तप से जिनका शरीर क्षीण हो गया है, जो वृद्ध हैं और बीमारी से पीडित हैं ऐसे मुनियों की निरन्तर वैय्यावृत्ति करना चाहिए जिससे वे तप करने में समर्थ हो जावें ॥३३४॥

इन दोनों के अतिरिक्त दयादान सभी के लिए देना चाहिए। यह सब सुन कर राजा अत्यन्त सुदृढ़ परिणामी श्रावक हो गया। जैसा कि कहा है-

श्रद्धालु, भक्ति सहित, निरन्तर छह कर्मों के पालन करने में तत्पर, श्रुत-स्वाध्याय, शील, तप, दान तथा जिनपूजा करने में तत्पर हो गया ॥३३५॥

जैसा कि कहा है-

हजारों मिथ्यादृष्टियों की अपेक्षा एक जैन अच्छा है और हजारों जैनों की अपेक्षा एक श्रावक अच्छा है ॥३३६॥

हजारों श्रावकों की अपेक्षा एक अणुव्रती अच्छा है और हजारों अणुव्रतियों की अपेक्षा एक महाव्रती अच्छा है ॥३३७॥

हजारों महाव्रतियों की अपेक्षा एक जिनागम का ज्ञाता अच्छा है और हजारों जिनागम के ज्ञाताओं की अपेक्षा एक आत्मतत्त्व को जानने वाला अच्छा है ॥३३८॥

हजारों आत्मतत्त्व को जानने वालों की अपेक्षा एक दया सहित मनुष्य अच्छा है क्योंकि दया सहित मनुष्य के समान अन्य मनुष्य न हुआ है और न होगा ॥३३९॥

जिसने इन्द्रियों के समूह को वश में कर लिया है, जो कृतज्ञ है, विनय से सहित है, जो कषाय रहित है, जिसकी आत्मा अत्यन्त शान्त है तथा जो सम्यग्दृष्टि है, वह महापवित्र है ॥३४०॥

इत्यादि गुणों से सहित सोमप्रभ राजा, राज्य छोड़कर, कालक्रम से उग्र तपश्चरण कर तथा संयम का पालन कर अन्तरङ्ग में सुखी हो गया।

जैसा कि कहा है-वह अन्त समय अनशन को प्राप्त हो तथा कर्मों का क्षय कर काल क्रम से समीचीन ध्यान से मरकर परम पद को प्राप्त हुआ ॥३४१॥

विश्वभूति भी समस्त सुखों को प्राप्त हो गया।

यह सब विश्वभूति का दृष्टान्त सुनकर सोमशर्मा मन्त्री कहता है-हे भगवन् ! इस समय मुझे आपके चरणों की ही शरण है इसलिए अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए प्रसन्न हो गये। यह वचन सुनकर मुनि ने उसे सम्यग्दर्शन पूर्वक श्रावक का व्रत दिया। श्रावक के व्रत को ग्रहण करने वाला मन्त्री मुनिराज

से कहता है कि हे मुनिवर ! मुझे इस जन्म में लोहे का शस्त्र न धारण करने का नियम दीजिये। तदनन्तर मुनि ने उसे नियम दे दिया और नियम में स्थिर रहने के लिए उसकी प्रशंसा भी की। तदनन्तर मन्त्री, मुनि को नमस्कार कर घर आ गया। उस समय से शुद्ध श्रावक धर्म का पालन करते हुए मन्त्री का काल व्यतीत होने लगा। इस तरह उसका बहुत काल बीत गया।

एक दिन किसी दुष्ट ने राजा के आगे कहा-हे देव ! सोमशर्मा मन्त्री काठ की तलवार से तुम्हारी सेवा करता है। शत्रु का संकट उपस्थित होने पर लोहे के शस्त्र बिना संग्राम में योद्धाओं को किस प्रकार मारेगा? इसलिये हे देव! यह सोमशर्मा तुम्हारा भक्त नहीं हैं। कहा भी है-

दुष्ट मनुष्य अपने प्राण छोड़कर भी दूसरे के सुख में विघ्न करता है क्योंकि भोजन के पास ग्रास में पड़ी हुई मक्खी भोजन करने वाले को शीघ्र ही वमन करा देती है॥३४२॥

राजा, दुष्ट का यह वचन सुन गम्भीरता के कारण अपने मन में रख कर चुप रह गया। एक समय जब राजा सभा में बैठा हुआ था तब उसने तलवार की बात चलाई। पश्चात् राजा ने म्यान से निकाल कर अपनी रत्नजटित तलवार समस्त कुमारों के आगे दिखलायी। राजकुमारों ने उस तलवार की प्रशंसा की। इसके बाद सब सभासदों ने अपना-अपना शस्त्र दिखाया। इस प्रकार समस्त राजकुमारों की तलवारें देखकर राजा ने सोमशर्मा मन्त्री से कहा-हे मन्त्री जी ! तुम भी अपनी तलवार मेरे आगे दिखलाओ।

राजा के हृदय की चेष्टा तथा मुखाकृति से राजा के उस प्रश्न को कारण सहित मानकर मंत्री ने अपने मन में विचार किया-अहो ! यह किसी दुष्ट की चेष्टा है अन्यथा राजा मेरी तलवार की परीक्षा क्यों करता ? कहा भी है-

प्रकट किया हुआ अर्थ पशु भी समझ लेता है प्रेरणा करने पर घोड़े और हाथी भी वहन करते हैं परन्तु पण्डित जन बिना कही बात को भी समझ लेते हैं। वास्तव में दूसरे के अभिप्राय को जान लेना ही बुद्धि का फल है॥३४३॥

तदनन्तर अपने मन में देव और गुरु का स्मरण कर मन्त्री ने अपने हृदय में कहा-यदि मुझे देव और गुरु का निश्चय है तो यह तलवार लोह निर्मित हो जाय। ऐसा विचार कर उसने म्यान सहित तलवार राजा के हाथ में सौंप दी। जब राजा म्यान से तलवार निकालता है तब वह सूर्य के समान चमकती हुई लोह निर्मित देखी गई। पश्चात् राजा ने दुष्ट के मुख की ओर देखकर कहा—अरे दुष्ट हृदय !

मेरे आगे भी तूने झूठ कहा। दूसरे के अवगुण कहना-यह दुष्ट का स्वभाव है।

राजा ने उसके प्रति क्रोध प्रकट किया। तब मन्त्री ने कहा-हे राजन् ! राजा देवता स्वरूप है इसलिए उसके आगे जैसा तैसा कभी नहीं कहना चाहिये।

जैसा कि कहा है-

राजा समस्त देवतामय है ऐसा विद्वान् जन कहते हैं इसलिए उसको देव के समान देखना चाहिये, उसके साथ असत्य व्यवहार कभी नहीं करना चाहिये॥३४४॥

परन्तु इसके कहने में कारण है इसलिए इस पर क्रोध मत कीजिये। इसने जो कुछ कहा है वह सत्य ही है। राजा ने कहा—अहो, यह सत्पुरुष है क्योंकि अपकारी पुरुष का भी भला विचारता है। उसे धिक्कार हो जो उपकारी पुरुष का भी बुरा सोचता है।

जैसा कि कहा है—

सज्जन मनुष्य, अपकार करने वाले का भी भला करने की चेष्टा करते हैं। उस पुरुष को धिक्कार है कि जो सदा उपकार करने वाले का भी बुरा करता है॥३४५॥

दूसरे के गुणों को नष्ट करने वाले दुर्जनों की बड़ी चतुराई है क्योंकि अपने भीतर चन्द्रमा की किरणों को छिपाने वाले मेघों की भी अधिक मलिनता देखी जाती है॥३४६॥

दानी मनुष्य, गुणी मनुष्य के लिए धन देता है और अदानी मनुष्य उसे मना करता है ठीक ही है क्योंकि राजा का धन जाता है परन्तु भण्डारी दुर्बल होता है॥३४७॥

साधु पुरुष धर्म का भार धारण करता है और दुर्जन उसके दोष कहता है क्योंकि धनी मनुष्य गाय को दुहता है और चोर उसके हाथ पकड़ता है॥३४८॥

राजा ने फिर भी कहा-हे मन्त्री जी ! यह लकड़ी की तलवार लोहमय कैसे हो गयी ? मन्त्री ने कहा-

हे राजन् ! मैंने सत्पात्र के लिए दिये हुए दान का अतिशय सुनकर तथा लोहे के दोष देखकर लोहे के शस्त्रों का नियम कर लिया था। उस समय से मैंने काष्ठ की तलवार धारण कर रहा हूँ। आज धर्म के प्रभाव से लोहे की हो गई है क्योंकि धर्म की महिमा विचित्र है। जैसा कि कहा है-

धर्म, दुर्गतियों की संगति कराने वाले व्यापार को नष्ट करने के लिए भयंकर वज्र है। धर्म, अनुपम दु:ख रूपी दावानल की ज्वालाओं के समूह को बुझाने के लिए

मेघ है। धर्म, प्राणियों को सुख देने वालों का दायित्व रखने वालों में प्रधान है और धर्म, मुक्ति रूपी स्त्री को मिलाने वाले कार्यों में बद्धादर है-तत्पर है॥३४९॥

अतएव मेरे ऊपर क्षमा करो, यह सुन राजा तथा अन्य लोगों ने मन्त्री की प्रशंसा कर उसका सम्मान किया। देवों ने भी पंचाश्चर्य कर मन्त्री की पूजा की। जैसा कि कहा है-

प्रत्येक पर्वत में माणिक्य नहीं होते, प्रत्येक हाथी में मोती नहीं होते, सर्वत्र सज्जन नहीं होते और प्रत्येक वन में चन्दन नहीं होता है॥३५०॥ जो उपकारी जनों के विषय में साधू है उसके साधुपन में क्या गुण है ? जो अपकारी जनों के विषय में साधु है परमार्थ से विद्वानों द्वारा वही साधु कहा जाता है॥३५१॥

सज्जन पुरुष, दुर्जनों के वचनरूपी अङ्गारों से दग्ध होता हुआ भी विरूद्ध नहीं वचन बोलता है क्योंकि अगुरु चन्दन जलता हुआ भी अपनी स्वाभाविक गन्ध नहीं छोड़ता है॥३५२॥

यह सब धर्म का माहात्म्य देख व सुनकर अजितञ्जय राजा ने कहा-अरे मनुष्यो ! जैन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म दुर्गति को नष्ट नहीं करता है तथा अधर्म से इस भव में भी सुख नहीं होता है। इस प्रकार धर्म का प्रभाव कहकर वैराग्य में तत्पर रहने वाले राजा ने अपने पुत्र शत्रुञ्जय को राज्य पर और सोमशर्मा मन्त्री ने अपने पुत्र देवशर्मा को मन्त्रिपद पर आरूढ़ कर अन्य अनेक जनों के साथ, समाधिगुप्त भट्टारक के समीप तप ग्रहण कर लिया। कोई श्रावक हुए और कोई भद्रपरिणामी हुए। रानी सुप्रभा और मन्त्री की स्त्री सोमा ने अन्य बहुत स्त्रियों के साथ अभयमती आर्यिका के समीप तप ले लिया और कितनी ही स्त्रियाँ श्राविकायें हो गयीं।

विष्णुश्री ने अर्हद्दास सेठ से कहा-हे स्वामिन्! यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है। उसके बाद ही मेरा सम्यक्त्व दृढ़ हुआ है। यह कथा सुनकर अर्हद्दास ने कहा-

हे प्रिये ! तुमने जो देखा है उसकी मैं श्रद्धा करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उसकी रुचि करता हूँ।अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा। परन्तु कुन्दलता ने कहा-यह सब असत्य है इसलिए मैं न श्रद्धा करती हूँ, न इसे चाहती हूँ और न इसकी रुचि करती हूँ। यह वृत्तान्त राजा, मन्त्री और चोर ने सुनकर अपने मन में कहा-विष्णु श्री ने जिसे प्रत्यक्ष देखा है उस धर्म के फल को यह पापिनी झूठ क्यों कहती है ? प्रातःकाल गधे पर चढ़ा कर हम इसका निग्रह करेगें। चोर ने फिर भी अपने मन में विचार किया-अहो ! दुष्टपुरुष, जाति का उत्तम होने पर भी स्वभाव को नहीं छोड़ता है। जैसा कि कहा है-

चूँकि चन्दन से भी उत्पन्न हुई अग्नि जलाती ही है इसलिए जो दुर्जन है वह विशिष्ट कुल में उत्पन्न होने पर भी दुर्जन ही रहता है॥३५३॥

और इससे विपरीत जो सज्जन है वह नीच कुल में उत्पन्न होकर भी श्रेष्ठ महिमा को धारण करता है। जैसा कि कहा है-

कस्तूरी का जन्म स्थान निर्मल नहीं है, वर्ण भी प्रशंसनीय नहीं है और शरीर में लगाने पर शोभा तो दूर रही कीचड़ की शंका उत्पन्न करती है। यद्यपि यह ऐसी है तथापि समस्त सुगन्धित पदार्थों के गर्व को हरने वाली है। कौन जानता है कि कस्तूरी की सार वस्तु उसका सुगन्धि गुण है॥३५४॥

इस प्रकार चौथी कथा समाप्त हुई।

सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली नागश्री की कथा

तदनन्तर सेठ ने नागश्री से कहा कि हे प्रिये ! तुम अपने सम्यक्त्व प्राप्ति का कारण कहो। वह कहने लगी-

काशी देश की वाराणसी नगरी में सोमवंशीय राजा जितारि रहता था, उसकी रानी का नाम कनकचित्रा था और पुत्री का नाम मुण्डिका था। वह प्रतिदिन मिट्टी खाती थी जिससे धीरे-धीरे अत्यधिक रोग से ग्रस्त हो गयी। राजा के मंत्री का नाम सुदर्शन था और उसकी स्त्री का नाम सुदर्शना था। एक समय वृषभश्री आर्यिका ने सम्बोधित कर मुण्डिका को जैनी बना लिया। सत्पुरुषों का यह स्वभाव है कि वे परोपकार करते हैं। तदनन्तर निरतिचार श्रावक के व्रतों का पालन करती हुई मुण्डिका व्रत के माहात्म्य से निरोग तथा रूपवती हो गयी। उस समय आर्यिका ने कहा कि हे पुत्रि ! जो निर्दोष व्रत का पालन करता है वह स्वर्ग और मोक्ष का पात्र होता है, रूप और नीरोगता की क्या बात है ? तत्पश्चात् व्रत का माहात्म्य सुनकर वह विशेष रूप से धर्म में आदर सहित हो गयी।

एक समय जितारि राजा ने पुत्री को नीरोग देख विवाह के निमित्त राजकुमार बुलाये और पुत्री के आगे विवाह के लिये सभी राजकुमार स्वयंवरमें दिखलाये। परन्तु उसके मन में कोई भी रुचिकर नहीं लगा। पश्चात् राजपुत्र अपने स्थान पर चले गये।

एक समय तुण्डदेश के चक्रकोट नामक नगर में राजा भगदत्त रहता था। वह दानशूर, रूप सौन्दर्य आदि गुणों से सहित तथा समस्त वस्तुओं से परिपूर्ण था परन्तु जाति से हीन था। उसकी रानी का नाम लक्ष्मीमति, मन्त्री का नाम सुबुद्धि और उसकी स्त्री का नाम गुणवती था। उस भगदत्त ने मुण्डिका की याचना की।

राजा जितारि ने कहा कि हे कुजात ! जो कन्या मैंने उच्चकुलीन उत्तम राजपुत्रों को नहीं दी है, अरे भगदत्त ! वह कन्या तुझ पापी दासीपुत्र के लिये कैसे दूँगा ? उसने कहा-हे राजन् ! गुण होना चाहिये जन्म में क्या रखा है ? जैसा कि कहा है-

रेशमी वस्त्र कीड़ों से उत्पन्न होता है, सुवर्ण पाषाण से निकलता है, दूर्वा मिट्टी में पैदा होती है, चमरी रुह गाय के बालों से उत्पन्न होती है, कमल कीचड़ से जन्म लेता है, चन्द्रमा समुद्र से प्रकट होता है, नीलकमल गोबर से उद्भूत होता है, अग्नि काष्ठ से उत्पन्न होती है, मणि साँप के फण से उपलब्ध होती है और गोरोचन गाय के पित्त से प्रकट होता है। ठीक है गुणी मनुष्य, पुण्य के उदय से प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं अत: जन्म से क्या होता है ? ॥३५५॥

और भी कहा है-गुण सर्वत्र पूजे जाते हैं, पिता का वंश निरर्थक है। देखो, लोग वासुदेव-कृष्ण को नमस्कार करते हैं परन्तु उनके पिता वसुदेव को नहीं॥।३५६॥

जितारि ने कहा- तुम गुणवान् हो तो भी तुम्हें बिलकुल नहीं दूँगा।

जैसा कि कहा है-अरे कुक्कुर ! यदि तू किसी मूर्ख द्वारा रत्नों की माला से अलंकृत कर दिया गया है तो मात्र गजराज को विदारण करने की क्रीड़ा करने वाले सिंह के साथ क्यों विरोध करता है ? ॥३५७॥

अथवा रे भगदत्त ! यदि तू दैवयोग से धनवान राजा हो गया है तो क्षत्रिय पुत्रों के साथ ईर्ष्या क्यों करता है ? ॥३५८॥

तदनन्तर भगदत्त ने कहा कि हे राजन्! यदि तुम्हें राज्य से प्रयोजन है तो कन्या देओ अन्यथा राज्य और कन्या दोनों को बलपूर्वक प्राप्त कर लूँगा।

जितारि ने कहा -युद्ध में तुम्हारी अभिलाषित सभी वस्तु दूँगा अन्यथा नहीं। यह वचन सुन तीव्र क्रोध कर भगदत्त जितारि के ऊपर चल पड़ा। तदनन्तर सुबुद्धि मन्त्री ने कहा- हे भगदत्त ! युद्ध की समस्त सामग्री इकट्ठी करके चलना है अन्यथा नाश ही होता है। जैसा कि कहा गया है-

जो मनुष्य अपना बल जाने बिना युद्ध के लिये सम्मुख चल देता है वह अग्नि में शलभ के समान नाश को प्राप्त होता है॥।३५९॥

जिस प्रकार राजा सेवकों के बिना शोभा को प्राप्त नहीं होता और सूर्य किरणों से रहित होने पर सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार बलवान् मनुष्य अंकेला सुशोभित नहीं होता किन्तु समुदाय से बलवान् होता है। जैसा कि तृणों से रस्सी बनाने पर हाथी बाँधा जाता है। कहा भी है-

ऐसा जानकर राजा को बुद्धिमान्, कुलीन, शूरवीर, समर्थ भक्त और कुल परम्परा से आये हुए लोगों को सेवक बनाना चाहिए॥।३६०॥

भगदत्त राजा ने सुबुद्धि मन्त्री से कहा ! तुमने जो कहा है वह सब कुछ सत्य है। इसलिये हितेच्छु के वचन स्वीकृत करना चाहिये अन्यथा अनर्थ होता है। पश्चात् सब सामग्री एकत्रित कर शुभमुहूर्त में उसने प्रस्थान करने का उद्योग किया।

इसी अवसर पर लक्ष्मीमति रानी ने कहा कि हे नाथ ! व्यर्थ ही दुराग्रह क्यों किया जाता है ? जहाँ दोनों की समानता हो वहीं विवाह और मित्रता आदि होती है। अन्यथा नहीं। अतएव अयुक्त कार्य नहीं करना चाहिए। कहा भी है-

जो मनुष्य न करने योग्य कार्यों में उद्योग करता है वह कील को उखाड़ने वाले वानर के समान मरण को प्राप्त होता है॥।३६१॥

भगदत्त ने कहा- हे मूर्ख ! पुरुष-पुरुष के अन्तर में कारण है। जितारि ने मेरे सामने कहा था कि युद्ध के बीच सब कुछ दिया जाता है। यदि आज वैसा नहीं करता हूँ- उस पर चढ़ाई नहीं करता हूँ तो अन्य राजाओं के लिए मैं भी मान्य नहीं रहूँगा।

मनुष्य विज्ञान, शूरवीरता, वैभव तथा अन्य गुणों से युक्त होकर यदि क्षणभर के लिए भी जीवित रहते हैं तो सत्पुरुष उसे ही जीवित रहने का फल कहते हैं। वैसे तो कौआ भी चिरकाल तक जीवित रहता है और बलि-चढ़ोत्तरी को खाता है॥।३६२॥

तदनन्तर बड़ी भारी तैयारी से निकल कर लगातार कई पड़ावों द्वारा भगदत्त जितारि के देश की सीमा पर पहुँच गया। लक्ष्मीमति रानी ने विचार किया कि जो होनहार है वह होगा परन्तु प्रस्थान के समय शुभशकुन हुए थे जैसे दही, दूर्वा और अक्षतों का पात्र, जल से भरे हुए कलशों पर रखी हुई डंठल सहित कमलिनी, प्रसूता स्त्री और वीणा आदि दर्शनीय पदार्थ आगे आये हैं।

किसी गुप्तचर ने आकर जितारि राजा के आगे कहा- हे देव ! भगदत्त राजा की सेना आ गयी है। तब गर्व से युक्त राजा ने कहा- अरे रंक ! पृथिवी पर वह कोई वीर है जो मेरे ऊपर चढ़ाई कर सके। मेरा जितारि नाम है- मैं शत्रुओं को जीतने वाला सचमुच का जितारि हूँ। जैसा कि कहा है-

पृथिवी लोक के मध्य ऐसा न देखा गया है और न सुना गया है कि मृग सिंह पर चढ़ाई करते हैं,चन्द्रमा और सूर्य राहु पर आक्रमण करते हैं अथवा चूहे बिलावों पर चढ़ते हैं॥।३६३॥

क्या साँप गरूड़ पर, गधे कुत्ते पर, प्राणि समूह यमराज पर और कौए बाज पक्षी पर आक्रमण करते हैं ?॥३६४॥

ठीक कहा है कि जबतक सूर्य उदित नहीं होता है तभी तक अन्धकार रहता है। इस प्रकार राजा जितारि जब तक कहता है तबतक गुप्त रूप से आकर भगदत्त राजा ने वाराणसी नगर घेर लिया। आये हुए भगदत्त का कोलाहल सुनकर जितारि बड़ी तैयारी से चतुरङ्ग सेना के साथ बाहर निकला। निकलते समय उसे अपशकुन हुए। जैसा कि कहा है-

अकाल वृष्टि, पृथिवी कम्पन, वज्रपात और भयंकर उल्कापात, ये सब अनिष्ट अपशकुन प्रकट हुए मानों मित्र के समान उसे युद्ध से रोकने के लिए ही प्रकट हुए थे॥।३६५॥

इस अवसर पर सुदर्शन मन्त्री ने कहा-हे देव ! कन्या देकर सुख से रहा जाये। जैसा कि कहा है-

बुद्धिमान् जन एक ग्राम का त्याग कर देश की, कुल का त्याग कर एक ग्राम की, एक व्यक्ति का त्याग कर कुल की और पृथिवी का त्याग कर अपने आपकी रक्षा करते हैं॥।३६६॥

जितारि ने कहा- हे श्रेष्ठ मन्त्रियों ! भय-किसलिये करते हो ? मेरी तलवार का प्रहार सहन करने के लिए कौन समर्थ है ? जैसा कि कहा है-

इस लोक में ऐसा कौन पुरुष है जो शिर पर वज्रपात को सह सके, ऐसा कौन मनुष्य है? जो भुजदण्डों के द्वारा अपार समुद्र को तैर सके? ऐसा कौन है? जो अग्निशय्या पर सुख की नींद का सेवन करता हो? और क्या ऐसा भी कोई है जो एक-एक ग्रास के द्वारा निरन्तर कालकूट विष का सेवन करता हो॥।३६७॥

पश्चात् अनुपम तैयारी से युक्त शत्रु सेना को देखकर मंत्री ने फिर कहा- हे देव ! बहुत बड़ी सेना आयी है क्या किया जाये ? जितारि ने कहा- हे मन्त्री ! पराक्रम से सिद्धि और विजय होती है बहुत सामग्री से नहीं। जैसा कि कहा है-

सूर्य के रथ को एक ही चक्र है, घोड़े नाग पाश से बद्ध हैं तथा गिनती के सात ही हैं, मार्ग आलम्बन रहित- निराधार आकाश है और सारथि भी चरणों से रहित- अनुरूप है फिर भी वह प्रतिदिन अपार आकाश के अन्त को प्राप्त होता है। इससे जान पड़ता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरण सहायक सामग्री में नहीं॥।३६८॥

अगस्त्य ऋषि का जन्म स्थान घट था, ग्रह समूह ही उनका परिवार था, भोज़पत्र उनका वस्त्र था, वन में उनका निवास था, कन्दमूल भोजन था, शरीर अस्वस्थ था, और स्वभाव के शान्त थे फिर भी उन्होंने अपार समुद्र को पी लिया। इससे सिद्ध होता है कि महापुरूषों की क्रियासिद्धि- कार्य की सफलता उनके पराक्रम में रहती है उपकरणों में नहीं॥।३६९॥

महादेवजी काम के शत्रु हैं, शीतल शरीर को धारण करने वाला चन्द्रमा उसका मन्त्री है, वसन्त ऋतु सामन्त है, पुष्प बाण हैं, स्त्रियाँ सेना है और स्वयं अनङ्ग - शरीर रहित है फिर भी वह तीन लोक को जीत लेता है। इससे जान पड़ता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरणों में नहीं॥।३७०॥

शेषनाग स्वयं तिर्यञ्च योनि का है, हाथ पैरों से रहित है, विशाल शिर से सहित है, स्वभाव से ही उसमें आलस्य भरा हुआ है, और वायुरूप ग्रास के भक्षण में निरत रहता है अर्थात् वायु ही उसका भोजन है फिर वह इस विश्व को फण की मणि पर धारण कर रहा है। इससे ज्ञात होता है कि महापुरुषों की क्रियासिद्धि उनके पराक्रम में रहती है उपकरण में नहीं॥।३७१॥

पश्चात् भगदत्त ने दूत के लक्षणों से युक्त दूत भेजा। दूत का लक्षण यह है- जो बुद्धिमान हो, वचन बोलने में चतुर हो, दूसरों के हृदय को देखने वाला हो, गम्भीर हो और सत्यवादी हो वही दूत का लक्षण है॥।३७२॥ भगदत्त ने ऐसा दूत भेजा। क्योंकि-

पहले दूत भेजना चाहिये पश्चात् युद्ध की घोषणा करनी चाहिये। उसका कारण यह है कि दूत के द्वारा सबल और निर्बल सेना का बोध हो जाता है॥।३७३॥

तदनन्तर उस दूत ने जितारि राजा के आगे जाकर कहा कि हे राजन् ! मुण्डिका को देकर और महा मण्डलेश्वर भगदत्त नरेन्द्र की सेवा कर सुख से राज करो अन्यथा विनाश ही होगा।

जैसा कि कहा है-

अनुचित कार्य का प्रारम्भ करना, आत्मीयजनों के साथ विरोध करना, बलिष्ठ पुरुषों के साथ ईर्ष्या करना और स्त्रियों का विश्वास करना ये मृत्यु के चार द्वार हैं॥।३७४॥

जितारि राजा ने कहा-अरे दीन! क्या कहता है ? युद्ध में मेरे आगे ये खड़े नहीं होंगे। अथवा जो होना हो वह हो किन्तु 'मैं पुत्री नहीं दूँगा' अपनी इस प्रतिज्ञा को सर्वनाश होने पर भी नहीं छोड़ूँगा। महापुरुष जिसे स्वीकृत कर लेते हैं उसे

छोड़ते नहीं है। जैसा कि कहा है-

सूर्यवंश में उत्पन्न हुए राजा हरिश्चन्द्र ने चाण्डाल की सेवा की, अद्भुत पराक्रम के धारक रामचन्द्रजी ने सघन कन्दरा का सेवन किया और चन्द्रवंशीय भी आदि उत्तम राजाओं ने रंक के समान दीनता की। इससे सिद्ध है कि पुरुषों ने अपनी प्रतिज्ञा का पालन करने के लिये क्या-क्या नहीं अंगीकृत किया है ? अर्थात् सभी कुछ किया है॥।३७५॥

शंकरजी अब भी कालकूट विष को नहीं छोड़ रहे हैं, कमठ अब भी अपनी पीठ पर पृथिवी को धारण कर रहा है और समुद्र अब भी दुस्सह बड़वानल को धारण कर रहा है सो ठीक है क्योंकि पुण्यात्मा जन स्वीकृत बात का अच्छी तरह पालन करते हैं॥।३७६॥

उस समय ऐसा कहकर क्रोध से परिपूर्ण जितारि ने दूत को मार डालने के लिये योद्धाओं को आज्ञा दी। पश्चात् मन्त्री ने विचार किया कि दूत को मारना अनुचित है। विचार कर उसने कहा भी- हे राजन् ! दूत के मारने से मन्त्री सहित राजा नरक को जाता है। राजा से ऐसा कहकर मन्त्री ने दूत को बाहर निकाल दिया। तदनन्तर दूत ने आकर राजा भगदत्त के आगे कहा- हे देव ! जितारि अपनी भुजाओं के बल से कुछ भी नहीं गिनता है। पश्चात् भगदत्त सेना को सजा कर युद्ध के लिये चल पड़ा। इधर जितारि भी सम्मुख होकर खड़ा हो गया। उस समय क्या-क्या हुआ सो सुनो-

दिग्मण्डल भय से चलायमान हो गया, समुद्र अत्यन्त व्याकुल हो उठा, पाताल में शेषनाग चकित रह गया, पर्वत काँप उठे, पृथिवी घूम गयी और बड़े-बड़े साँप भयंकर विष को उगलने लगे। सेना पति की सेना निकलते ही यह सब अनेक प्रकार के कार्य हुए॥।३७७॥

भगदत्त की सेना को विजयी देख मन्त्री ने कहा कि हे जितारि राजन् ! देखो, अपनी सेना में भय छा गया है इसलिये वह खड़ी नहीं रह सकेगी। राजा ने कहा कि हे मन्त्री ! कायर क्यों हो रहे हो ?

दोनों प्रकार से लाभ है विजयी होने पर इस लोक में सुख और मरने पर परलोक में सुख होगा। कहा भी है-

सुभट यदि विजयी होता है तो उसे लक्ष्मी प्राप्त होती है और मरता है तो देवाङ्गना मिलती है। शरीर क्षणभंगुर है अतः रण में मरण होने की क्या चिन्ता है ? ॥३७८॥

मन्त्री ने फिर कहा- हे राजन् ! मनुष्य यदि जीवित रहता है तो सैकड़ों कल्याणों को देख सकता है मरने पर क्या साध्य है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। पश्चात् जितारि किसी तरह लौट कर चला गया। जाते समय राजा जितारि ने कहा कि भाग्य ही प्रमाण है- वही बलवान् है, क्योंकि-

जहाँ वृहस्पति नायक था, वज्र शस्त्र था, देव सैनिक थे और स्वर्ग किला था, नारायण की कृपा थी और ऐरावत हाथी था, वहाँ इस प्रकार के आश्चर्यकारक बल से सहित होने पर भी इन्द्र युद्ध में दूसरों से पराजित हो गया, इससे जान पड़ता है कि निश्चय से देव ही शरण है व्यर्थ के पौरुष को धिक्कार हो॥।३७९॥

भगदत्त, जितारि के पीछे लग गया तब सुबुद्धि मंत्री ने उसे यह कहते हुए मना कर दिया कि हे भगदत्त ! यह उचित नहीं है।

जैसा कि कहा है-

भागते हुए भयभीत शत्रु का बलवान् मनुष्य को पीछा नहीं करना चाहिये क्योंकि मरण का निश्चय कर वह कभी शूरता को प्राप्त हो सकता है॥।३८०॥

इस सभी वृत्तान्त को देख सुनकर मुण्डिका ने हृदय में श्री जिनेन्द्र देव का स्मरण किया और समय की मर्यादा के साथ आहार पानी का त्याग करके णमोकार मन्त्र का उच्चारण करती हुई गहरे कूप में गिर पड़ी। उसके सम्यक्त्व के प्रभाव से जल स्थल हो गया, उसके ऊपर रत्नों का घर और उसके बीच में सिंहासन प्रकट हो गया। उस सिंहासन पर वह मुण्डिका सीता के समान स्थित हो गयी। देवों ने पञ्चाश्चर्य किये।

इधर राजा भगदत्त ने गोपुर को तोड़कर सभी नगर को लूटना प्रारम्भ कर दिया। जब भगदत्त राजा जितारि के भवन में प्रवेश करने लगा तब देवता ने उसे कील दिया।

इसी अवसर पर किसी पुरुष ने राजा भगदत्त के आगे मुण्डिका का सभी समाचार कह सुनाया। उसे सुनकर और प्रत्यक्ष देखकर वह मद रहित हो विनयपूर्वक मुण्डिका के चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा- हे बहिन ! मैंने जो किया है वह अज्ञानता से किया है उस सबको क्षमा करो। इत्यादि कहकर उसने धर्मसूचक हाथ देकर जितारि को भी बुलवा लिया। आये हुए जितारि के सामने भी उसने उसी प्रकार कहा। तदनन्तर जो अपने हृदय में वैराग्य की भावना भा रहा था ऐसे भगदत्त ने कहा कि जिनेन्द्र प्रणीत समीचीन धर्म प्राणियों का क्या-क्या हित नहीं करता है ? क्योंकि कहा है-

यह धर्म संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला पुल है और कर्म रूपी सघन वन को जलाने के लिये अग्नि है। इस प्रकार धर्म ही सहायक है। जैसा कि कहा है-

धर्म के प्रभाव से समस्त समृद्धि प्राप्त होती है, धर्म के प्रभाव से संसार में प्रसिद्धि होती है, धर्म के प्रभाव से अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं और धर्म के प्रभाव से अपने वंश की वृद्धि होती है॥।३८१॥

तदनन्तर अपने पुत्र के लिये राज्य देकर भगदत्त, जितारि तथा मुण्डिका आदि ने जिन दीक्षा ले ली और भी बहुत जीवों को धर्मलाभ हुआ। नागश्री ने कहा- हे स्वामिन् ! यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है इसलिये मुझे अत्यन्त दृढ़ सम्यक्त्व हुआ है।

पश्चात् अर्हद्दास ने कहा कि जो तुमने देखा है वह सत्य है इसलिये हे प्रिये मुझे वह रुचता, है। मैं उसकी श्रद्धा करता हूँ और इच्छा करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी वैसा ही कहा। तदनन्तर कुन्दलता ने कहा- यह सब असत्य है, इसलिये मैं इसकी श्रद्धा नहीं करती हूँ। राजा, मन्त्री और चोर ने अपने-अपने मन में कहा कि यह दुष्टा है। प्रभात समय गधे पर चढ़ाकर इसे हम लोग दण्डित करेंगे। चोर ने फिर भी अपने मन में विचार किया कि यह दुर्जन का स्वभाव ही है। जैसा कि कहा है-

दुष्ट मनुष्य को निन्दा किये बिना चैन नहीं पड़ती क्योंकि कौआ समस्त रसों को छोड़कर अशुचि पदार्थ के बिना संतुष्ट नहीं होता॥।३८२॥

दुष्ट पुरुष, दूसरों के सरसों बराबर दोषों को देखता है और अपने बेल के बराबर दोषों को देखता हुआ भी नहीं देखता है॥।३८३॥

सर्प क्रूर है और दुर्जन भी क्रूर है परन्तु दुर्जन, सर्प की अपेक्षा अधिक क्रूर है क्योंकि सर्प तो मन्त्र से शान्त हो जाता है परन्तु दुर्जन किससे शान्त होता है ? अर्थात् किसी से नहीं॥।३८४॥

सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली पद्मलता की कथा

तदनन्तर अर्हद्दास सेठ पद्मलता से पूछता है कि हे प्रिये ! तुम भी अपने सम्यक्त्व ग्रहण का कारण कहो। वह हाथ जोड़कर कहती है-

अङ्ग देश के चम्पापुर नगर में राजा धाड़िवाहन रहता था। उसकी रानी का नाम पद्मावती था। उसी नगर में एक वृषभदास नाम का सेठ रहता था जो महान् सम्यग्दृष्टि तथा समस्त गुणों से सम्पन्न था। उसकी स्त्री का नाम भी पद्मावती था। उन दोनों के पद्मश्री नाम की अत्यधिक रूपवती पुत्री थी। पद्मश्री का चित्त जिनधर्म से युक्त था तथा वह अनेक गुणों को धारण करने वाली

थी। उसी नगर में एक बुद्धदास नाम का दूसरा सेठ रहता था जो बौद्धधर्म के बीच प्रसिद्ध दानी था। उसकी स्त्री का नाम बुद्धदासी था। उन दोनों के बुद्धसंघ नाम का पुत्र था। वह बुद्धसंघ एक दिन अपने मित्र कामदेव के साथ कुतूहलवश जैन मन्दिर गया। वहाँ उसने देव पूजा करती हुई परमरूप पद्मश्री को देखा। पद्मश्री यौवनवती थी, रूप और लावण्य से सम्पन्न थी, मधुर वचन बोलने वाली थी, कुम्भ के समान स्थूल स्तनों से युक्त थी, बिम्बाफल के समान लाल-लाल ओठों से सहित थी और चन्द्रमा के समान सुन्दर मुख से सुशोभित थी। पद्मश्री के ऐसे रूप को देखकर नीच बुद्धसंघ काम से अन्धा हो गया। वह बड़े कष्ट से अपने घर पहुँचा और पहुँच कर शय्या पर पड़ रहा। पुत्र को चिन्तित देख माता ने कहा कि हे पुत्र ! किस कारण तुझे भोजनादिक नहीं रुच रहा है तथा बड़ी चिन्ता दिखायी दे रही है, कारण कहो।

तदनन्तर लज्जा छोडकर बुद्धसंघ ने कहा कि हे माँ ! जब मैं वृषभदास सेठ की पुत्री पद्मश्री को विवाह लूँगा तभी मेरा जीवन रहेगा, अन्यथा नहीं। ऐसा सुनकर बुद्धदासी ने अपने पति के आगे पुत्र का समस्त वृत्तान्त कह सुनाया। पश्चात् पिता ने भी कहा-

हे पुत्र ! मद्य-माँस का आहार करने वाले हम लोगों को वह वृषभदास चाण्डाल के समान देखता है। वह तुम्हें यह कन्या कैसे दे देगा ? इसीलिये प्राप्त होने योग्य वस्तु के विषय में ही विद्वानों द्वारा आग्रह किया जाता है अन्य वस्तु में नहीं।

दूसरी बात यह भी है-

जिनका समान शील होता है, जिनका समान कुल होता है, और जिनमें गुणों की समानता होती है उन्हीं की निश्चित मित्रता होती है॥३८५॥

पुत्र ने कहा- अधिक कहने से क्या प्रयोजन है ? उसके बिना मैं जीवित नहीं रह सकता। पिता ने कहा- अहो ! काम का माहात्म्य विषम है। कामाग्नि से प्रदीप्त मनुष्य अमृत के सेवन से भी शान्त नहीं होता है। जैसा कि कहा है-

कामाग्नि से संतापित मनुष्य, मेघसमूह के द्वारा सींचे जाने पर भी तथा जलराशि के द्वारा डुबाये जाने पर भी संतोष को नहीं छोड़ता है॥।३८६॥

मनुष्य तभी तक प्रतिष्ठा को धारण करता है, मन तभी तक चञ्चलता को छोड़ता है और समस्त तत्त्वों से देदीप्यमान सिद्धान्त सूत्र हृदय में तभी तक अत्यधिक रूप से स्फुरित रहता है जब तक क्षीरसागर की लहरों के समान सुशोभित स्त्रियों के कटाक्षों से ताड़ित होकर अत्यधिक चञ्चलता को धारण नहीं करता है॥।३८७॥

माता ने कहा-यह मूर्ख है। सभी कार्य सुसाध्य है परन्तु मूर्ख का चित्त सुसाध्य नहीं है जैसी कि कहावत है-पृथिवी पर सभी काम अच्छी तरह साध्य हैं परन्तु मूर्ख का हृदय साध्य नहीं है।

जैसा कि कहा है-

मगर के मुख के भीतरी दाँढ़ रूप अंकुरों से मणि को बलपूर्वक निकाल जा सकता है, तरङ्गवली से व्याप्त समुद्र को तैरा जा सकता है और क्रुद्ध सर्प को भी फूल की तरह सिर पर धारण किया जा सकता है परन्तु हठी मूर्ख मनुष्य के चित्त की आराधना नहीं की जा सकती॥।३८८॥ जिसका जो स्वभाव होता है वह उसे सैकड़ों शिक्षा के वचनों से भी नहीं छोड़ता है। पिता ने फिर कहा कि हे पुत्र ! स्थिर रहो-धीरज धरो, तुम्हारा काम क्रम से करूँगा। जैसा कि कहा है-

वामी की शिखर क्रम से बढ़ती है, विनय के द्वारा विद्या क्रम से ग्रहण की जाती है, छल के द्वारा शत्रु क्रम से नष्ट किया जाता है और तप के द्वारा मोक्ष क्रम से प्राप्त किया जाता है॥।३८९॥

इस प्रकार कह कर पिता पुत्र- दोनों बड़े छल से जैन हो गये। उनका जैनपन देखकर वृषभदास सेठ अत्यन्त सन्तुष्ट होकर कहता है कि अहो ! ये धन्य हैं जो मिथ्यात्व को छोड़कर सन्मार्ग में लग गये। एक धर्म के धारक होने से वृषभदास सेठ बुद्धसंघ के साथ परस्पर भोजनादिक करने लगा जिससे बुद्धदास के साथ उसकी बड़ी मित्रता हो गयी।

जैसा कि कहा है-

देता है, लेता है, गुप्त बात कहता है, पूछता है, भोजन करता है और भोजन कराता है ये छः प्रीति के लक्षण हैं॥।३९०॥

एक दिन उस वृषभदास सेठ ने बुद्धदास को अपने घर पर भोजन के लिये निमन्त्रित किया। भोजन के समय बुद्धदास ने भोजन नहीं किया। वृषभदास ने कहा- हे बुद्धदास ! भोजन क्यों नहीं कर रहे हों ? उसने कहा- यदि मेरे पुत्र के लिए अपनी पुत्री देओ तो भोजन किया जायेगा अन्यथा नहीं।

वृषभदास ने कहा- अहो, मित्र जिनके घर आते हैं वे धन्य हैं और विशेष तुम्हारे जैसे। अतएव हम धन्य हैं। अवश्य ही तुम्हारे पुत्र के लिये पुत्री दूँगा। तदनन्तर शुभ दिन में विवाह हो गया और पद्मश्री को लेकर बुद्धसंघ अपने घर चला गया। विवाह के बाद पिता-पुत्र दोनों फिर से बुद्ध के भक्त हो गये। यह सब देख सुनकर सेठ ने अत्यन्त खिन्न होकर कहा—अहो। गूढ़छल को कोई नहीं जानता है।

कहा भी है—

अच्छी तरह किये हुए कपट के अन्त को ब्रह्मा भी नहीं प्राप्त कर सकता है। देखो, विष्णु के रूप में तन्तुवाय राजकन्या का सेवन करता रहा॥३९१॥

और भी कहा है—

जो दुष्ट अभिप्राय वाला मनुष्य धन की आशा से अविश्वास के क्रीड़ागृह स्वरूप मायाचार को करता है वह पड़ते हुए बहुत भारी अनर्थ को उस तरह नहीं देखता है जिस तरह कि दूध पीता हुआ बिलाव पड़ते हुए डंडे को नहीं देखता है॥३९२॥

पश्चात् वृषभदास सेठ ने बुद्धदास और बुद्धसंघ को बुलाकर कहा तथा व्रतभङ्ग का दोष दिखाया।

जैसा कि कहा है—

गुरू की साक्षीपूर्वक लिया हुआ व्रत, प्राणान्त का अवसर आने पर भी नहीं छोड़ना चाहिये क्योंकि व्रतभङ्ग दु:ख के लिये होता है परन्तु प्राण जन्म-जन्म में प्राप्त होते रहते हैं॥३९३॥

परन्तु उन दोनों के चित्त में कुछ नहीं लगा। वृषभदास सेठ कर्मोदय का विचार कर चुप बैठा रहा।

एक समय बुद्धदास का गुरू जो पद्मसंघ था उसने पद्मश्री से कहा-हे पुत्रि ! सब धर्मों के मध्य में बौद्धधर्म ही सबसे श्रेष्ठ धर्म है अन्य नहीं। पद्मश्री ने कहा- हे पद्मसंघ ! सन्मार्ग को छोड़कर नीच मार्ग की ओर मेरा मन कैसे प्रवृत्त हो सकता है ? जैसा कि कहा है-

जिस प्रकार मृग का मांस खाने वाले सिंह में भूखे होने पर भी तृण नहीं खाते। इसी प्रकार कुलीन मनुष्य कष्ट से युक्त होने पर नीच कार्यों का आचरण नहीं करते हैं॥३९४॥

और भी कहा है-

देव तथा गुरु के समीप लिये हुए व्रतों को जो छोड़ता है वह इस लोक तथा परलोक में दु:खी होता है। व्रतहीन मनुष्य निरन्तर सौभाग्यहीन, धन-धान्यादि से रहित, भयभीत और दु:खी होता है॥३९५॥

'जो काम हितकारी हो उसका आचरण अवश्य करना चाहिये। लोगों के कहने से क्या होता है? जैसा कि कहा है-

अपना हित स्वयं करना चाहिये बहुत बोलने वाले मनुष्य क्या कर लेंगे।

क्योंकि ऐसा कोई उपाय नहीं है जो सब लोगों को संतुष्ट करने वाला हो॥३९६॥

पद्मश्री के यह वचन सुन पद्मसंघ चुपचाप अपने घर चला गया।

इस प्रकार समय व्यतीत होने पर कुछ समय बाद पद्मश्री के पिता वृषभदास सेठ ने अपनी मृत्यु का समय निकट जान चतुर्विध संघ की साक्षीपूर्वक समस्त जीवों से क्षमा माँगी, 'मेरे पाप मिथ्या हों' यह कहकर अरिहंत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म-इन चार की शरण को प्राप्त किया, पाप स्थानों का मन, वचन, काय से त्याग किया, आहार का त्याग किया और पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करते हुए, प्राण त्याग कर स्वर्ग प्राप्त किया। इस दुःख से पद्मश्री अत्यन्त दुखी हो गयी। श्वसुर पक्ष के लोग विधर्मी होने से तथा इसके अकेली रह जाने से उसका तिरस्कार करने लगे परन्तु वह दृढ़चित्त रही और उसने जिनधर्म नहीं छोड़ा।

एक समय अवसर पाकर बुद्धदास ने कहा कि हे वधु ! मेरे गुरु ने तुम्हारे पिता का जन्म कहा है- उन्होंने कहा है कि वृषभदास मरकर वन के मध्य हरिण हुआ है। यह वचन सुन मन में बहुत भारी क्रोध कर पद्मश्री ने मायापूर्ण वचन कहा कि यदि आपके गुरु ऐसे ज्ञाता हैं तो मैं अवश्य ही बौद्धव्रत ग्रहण करती हूँ। पद्मश्री का इस प्रकार का वचन सुन बुद्धदास ने हर्षित होते हुए कहा कि हे वधु ! प्रातःकाल पहले हमारे गुरुओं के लिये भोजन देओ पश्चात् बौद्धधर्म धारण करो। पदमश्री ने बुद्धदास की बात स्वीकार कर ली। दूसरे दिन उसने बौद्ध साधुओं को भोजन के लिये निमन्त्रण दिया। वे सभी साधु हर्षित होकर आ गये।

तदनन्तर उन सब साधुओं को अपने घर के भीतर बड़े आदर से आसनों पर बैठाया और सब की पूजा की। इधर घर के बाहर रखे हुए उन साधुओं के बायें पैर का एक-एक जूता उसने चेटी के द्वारा गुप्तरूप से उठवा लिया और उनके सूक्ष्म टुकड़े कर उनका शाक बनाया तथा हींग आदि से बघारकर और भोजन के मध्य रखकर सब साधुओं को उनका भोजन करा दिया। भोजन के बाद पद्मश्री ने सब की प्रशंसा की और कहा कि मैं आज कृतार्थ हो गयी, मेरा जन्म सफल हो गया। गन्ध लेपन तथा पान आदि सब कुछ देकर उसने कहा कि मैं प्रातःकाल बौद्धधर्म ग्रहण करूँगी। बौद्ध साधुओं ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृति दी।

उन सभी गुरुओं ने जब जाने लगे तब अपना बायें पैर का जूता नहीं देखा। सब जगह देखने पर भी जब उन्हें नहीं दिखा तब उन्होंने सेवकों आदि से पूछा। सेवकों ने भी कहा कि हम लोग शपथपूर्वक कहते हैं कि हम आपके जूतों को नहीं जानते हैं। इससे कोलाहल हो गया और बुद्धदास आदि सभी लोग आ गये। उस कोलाहल को

सुनकर पद्मश्री ने कहा कि आप लोग तो ज्ञानी हैं, तीनों काल की बात को जानने वाला आपका ज्ञान देदीप्यमान है इसीलिये आप समस्त वस्तुओं को दीपक के समान प्रकट कर देते हैं फिर जूतों की बात ही क्या ? अत: अपने ज्ञान से देखिये-जूते कहाँ है ? साधुओं ने कहा कि ऐसा ज्ञान नहीं है। पद्मश्री ने पुन: कहा-हे पूज्य जनों ! आप लोग, 'कोड़ी तो जुटा नहीं सकते हैं, नांदिया का बयाना कैसे लिया जाता है' इस कहावत को सिद्ध कर रहे हैं। साधुओं ने कहा- यह कैसे ? पद्मश्री ने कहा कि आप लोग अपने पेट में स्थित जूतों को जानने के लिये तो समर्थ नहीं हैं फिर उत्तम समाधि मरण के द्वारा स्वर्ग को प्राप्त करने वाले हमारे पिता की तिर्यञ्च गति को कैसे जानते हैं ? पद्मश्री के व्यंङ्गपूर्ण वचन सुनकर साधुओं ने रोष सहित कहा कि रे बकने वाली ! इस प्रकार का उद्दण्डतापूर्ण वचन किस प्रमाण से कहती है ? पद्मश्री ने कहा कि अपनी बुद्धि से। परन्तु आप लोग उत्तम साधु हैं अत: आपको क्रोध करना उचित नहीं है। क्योंकि क्रोध के कारण मनुष्य तप से भ्रष्ट हो जाता है और उसकी सुगति का नाश हो जाता है। जैसा कि कहा है-

क्रोध, दूसरों को संताप करने वाला है, क्रोध, सबको उद्वेग करने वाला है, क्रोध वैर को उत्पन्न करने वाला है और क्रोध सुगति को नष्ट करने वाला है॥।३९७॥

बौद्ध साधुओं ने कहा अरि पापिन् ! दुरात्मन् ! जूते क्या हम लोगों के पेट में हैं ? उसने कहा कि ऐसा ही है, इसमें संदेह नहीं है। साधुओं ने कहा कि यदि नहीं होंगे तो क्या किया जायेगा ? पद्मश्री ने कहा कि जो आप लोगों के जी में रुचे। बौद्धों ने कहा कि मस्तक मुड़ा कर घर से निकाल देंगे। उसने कहा- ऐसा हो, परन्तु यदि जूते पेट में होंगे तो आप लोगों को सब धर्मों में प्रमुख तथा सुगति को देने वाला जैनधर्म स्वीकृत करना होगा। उन्होंने कहा-ऐसा हो। पश्चात् मैंनार (कोई फल विशेष) का फल देकर उसने सबको वमन कराया। जिससे अपनी अपनी वान्ति के बीच चमड़े के सूक्ष्म खण्ड देखकर लज्जित होते हुए क्रोध सहित अपने स्थान पर चले गये।

तदनन्तर उन बौद्ध गुरुओं ने अपने समुदाय को इकट्ठा कर तथा बुद्धदास को बुलाकर कहा कि हे घोर पापी ! तेरे उपदेश से हम लोगों ने भोजन का निमन्त्रण माना था परन्तु तूने अपनी वधू की ओर से हम लोगों का वह अवाच्य कार्य कराया। बुद्धदास ने कहा कि हे पूज्य ! यह कार्य मैंने बिल्कुल ही नहीं कराया है। बौद्धगुरुओं ने कहा कि यदि ऐसा है तो इस पद्मश्री को अपने घर से निकाल दो, अन्यथा तुम्हारे सब कुटुम्ब का नाश हो जायगा। यह सुन घबड़ाये हुए बुद्धदास ने सब कुछ छीनकर पद्मश्री को घर से निकाल दिया। उसके स्नेह से बुद्धसंघ भी

उसके साथ निकल गया। तदनन्तर पद्मश्री ने बुद्धसंघ ने कहा कि हे स्वामिन् ! हम दोनों हमारी माता के घर चलें। बुद्धसंघ से कहा कि भिक्षाटन कर लूँगा परन्तु श्वसुर के घर नहीं जाऊँगा। इस नगर में रहते हुए मेरा मान भङ्ग होगा।

क्योंकि कहा है-

प्राण त्याग देना अच्छा है परन्तु मानभङ्ग करना अच्छा नहीं है क्योंकि मृत्यु से तो क्षण भर के लिये दु:ख होता है परन्तु मानभंग से प्रतिदिन दु:ख होता है॥३९८॥

जहाँ सम्मान हो उसी स्थान पर रहना चाहिये, मान रहित स्थान को छोड़ देना चाहिये। देवों के साथ मानरहित होकर विमान भी बैठने को मिले तो उसे छोड़ देना चाहिये॥३९९॥

बन्धुओं के बीच धनहीन जीवन व्यतीत करना सत्पुरुषों के लिये अच्छा नहीं लगता। जैसा कि कहा है-जो वन व्याघ्र और गजेन्द्रों से भरा हुआ है, जिसमें वृक्ष ही घर है, पत्र तथा फल आदि का भोजन प्राप्त होता है, घास फूस ही शय्या है और वृक्षों के जीर्णशीर्ण वल्कल ही वस्त्र होते हैं ऐसा वन अच्छा है परन्तु बन्धुओं के मध्य धनहीन जीवन बिताना अच्छा नहीं है॥४००॥

और भी कहा है-

उत्तम मनुष्य वे हैं जो अपने गुणों से प्रसिद्ध होते हैं, मध्यम वे हैं जो पिता के गुणों से प्रसिद्धि पाते हैं, अधम वे हैं जो मामा के गुणों से प्रख्यात होते हैं और अधमाधम वे हैं जो श्वसुर के गुणों से प्रसिद्ध होते हैं॥४०१॥

ऐसा विचार कर बुद्धसंघ पद्मश्री के साथ दूसरे देश को चल पड़ा। गाँव के बाहर उसे एक बनिजारा सेठ मिल गया। वह बनिजारा भी पद्मश्री का रूप देखकर राग से अन्धा हो गया। तदनन्तर बनिजारे सेठ ने अपना कार्य बनाने के लिये बुद्धसंघ को बहुत सम्मान दिया और भोजन के लिये आमंत्रित किया। पश्चात् बुद्धसंघ सेठ की प्रार्थना से उसके उतरने के स्थान पर जा बैठा। सेठ ने दो खण्ड वाली हण्डी में भोजन बनवाया। एक खण्ड में विषमिश्रित और दूसरे में विषरहित। जब भोजन तैयार हो गया तब सेठ ने बुद्धसंघ को बुलावा भेजा। तदनन्तर सेठ और बुद्धसंघ एक ही बर्तन में भोजन करने के लिये बैठे। जिसे पहले से ही संकेत कर दिया था ऐसे पुरुष ने बर्तन में पृथक्-पृथक् अन्न परोसा ! उस अन्न को पृथक्-पृथक् देख बुद्धसंघ को शंका हो गयी इसलिये उसने दोनों अन्नों को इकट्ठा कर दिया-मिला दिया। जिससे परस्पर का विष मिश्रित अन्न खाकर वे दोनों मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। जैसा कि कहा है-

दूसरे के कष्ट से हर्षित होने वाला दुष्ट मनुष्य, अपने मरण को भी नहीं गिनता है। सिररहित धड़, युद्धस्थल में हजारों योद्धाओं का नाश होने पर भी प्रायः नाचता रहता है॥।४०२॥

अपने स्वामी का शोक करती हुई पद्मश्री ने किसी तरह रात्रि व्यतीत की। प्रातःकाल बुद्धदास ने लोगों के मुख से अपने पुत्र के मूर्च्छित होने का समाचार सुना तो वह बहुत भारी शोक करता हुआ वहाँ आकर बोला कि अरी डायन ! तूने मेरे पुत्र को खा लिया और इस सेठ को भी। बहुत कहने से क्या प्रयोजन है ? तो मेरे पुत्र को खड़ा कर और इस सेठ को अन्यथा तेरा निग्रह करूँगा-ऐसा कहकर वह उसके पादमूल में पुत्र को रखकर रोता हुआ बैठ गया।

पद्मश्री ने विचार किया कि अहो ! मेरा जो कर्मोदय आया है वह किसके द्वारा रोका जा सकता है ? ऐसा निश्चय कर उसने हाथ जोड़कर कहा कि यदि मेरे मन में जिनधर्म का निश्चय है, यदि मैं पतिव्रता हूँ और यदि मैंने रात्रिभोजनादिक का त्याग किया है तो हे शासन देवता ! मेरा पति जीवित हो जाय और यह सेठ भी। तदनन्तर शासन देवी ने उसके व्रत के माहात्म्य से सभी को जीवित कर दिया। पश्चात् यह देख नगर के समस्त आबाल गोपाल लोगों ने पद्मश्री की प्रशंसा की। अहो, यह धन्य है कि जो ऐसा रूप और ऐसी अवस्था के रहते हुए भी इसमें साधुता और धर्मज्ञता विद्यमान है। यह बड़ा आश्चर्य है। क्योंकि कहा है-

यदि राजा, राजनीति में निपुण और धर्मात्मा है तो क्या आश्चर्य की बात है और यदि ब्राह्मण, वेदशास्त्र में निपुण तथा पण्डित है तो इसमें भी क्या आश्चर्य है किन्तु रूप और तारूण्य से युक्त स्त्री यदि साध्वी है तो आश्चर्य है। इसी प्रकार निर्धन मनुष्य यदि पाप नहीं करता है तो आश्चर्य है॥।४०३॥

यह आश्चर्य देख लोगों ने पद्मश्री की पूजा की। देवों ने भी पञ्चाश्चर्य कर उसका सम्मान किया। उसका प्रभाव देखने के लिये राजा भी नगरवासियों के साथ आ गया। बुद्धदास, बड़े उत्साहपूर्वक बुद्धसंघ के साथ पद्मश्री को नगर के मध्य ले आया। धर्म के उस प्रत्यक्ष फल को देखकर बुद्धदास का कुटुम्ब जैनधर्म में अनुरक्त हो गया। यह सब प्रत्यक्ष रूप से देख सुनकर राजा धाडिवाहन वैराग्य में तत्पर होता हुआ कहने लगा कि अहो ! जिनधर्म को छोड़ कर अन्य धर्मों से समस्त इष्ट की प्राप्ति नहीं होती है। इसलिये इसे स्वीकृत करना चाहिये। तदनन्तर अपने पुत्र नवविक्रम को राज्य पर स्थापित कर धाडिवाहन राजा ने अन्य अनेक जनों के साथ यशोधर मुनि के पास तप ग्रहण कर लिया। बुद्धदास और बुद्धसंघ आदि भी श्रावक हो गये। कितने लोग भद्र परिणामी हो गये। बौद्धसाधु जैन बन गये। रानी

पद्मावती, बुद्धदासी, वृषभदास सेठ की स्त्री पद्मावती तथा पद्मश्री आदि ने सरस्वती आर्यिका के समीप तप ग्रहण कर लिया।

पद्मलता ने कहा कि हे स्वामिन् ! यह सब मैंने प्रत्यक्ष रूप से देखा है इसलिये सुदृढ़ सम्यक्त्व उत्पन्न हुआ है। यह सुनकर अर्हद्दास सेठ ने कहा कि हे प्रिये ! तुमने जो देखा है उसकी मैं श्रद्धा करता हूँ, उसे चाहता हूँ और उसकी रुचि करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा। कुन्दलता के प्रति भी सेठ ने कहा कि हे कुन्दलते ! तुम भी निश्चल चित्त होकर नृत्यादि करो। पश्चात् कुन्दलता ने कहा कि वह सब असत्य है इसलिये न मैं श्रद्धा करती हूँ और न इसकी रुचि करती हूँ यह सब कुछ सुनकर राजा, मन्त्री और चोर ने अपने मन में कहा कि अहो ! पद्मलता ने जो प्रत्यक्ष देखा है उसे यह पापिनी कुन्दलता असत्य कहती है। प्रातःकाल गधे पर चढ़ाकर हम लोग इसका निग्रह करेंगे। चोर ने अपने मन में फिर भी कहा कि अहो ! दुष्ट का यह स्वभाव है।

जैसा कि कहा है-

दुर्जन मनुष्य, योग्य संगम को देखकर स्वयं बिना कारण दूसरे के प्रति क्रोध करता सो ठीक ही है क्योंकि आकाश में निर्मल चाँदनी को देखकर कुत्ते को छोड़ दूसरा कौन भौंकता है? अर्थात् कोई नहीं॥।४०४॥ इस प्रकार छठ्वीं कथा पूर्ण हुई।

सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली कनकलता की कथा

पश्चात् अर्हद्दास सेठ कनकलता से कहता है कि हे प्रिये ! तुम भी मेरे आगे अपने सम्यक्त्व की प्राप्ति का कारण कहो-वह कहती है-

अवन्ति देश की उज्जयिनी नगरी में राजा नरपाल रहता था, उसकी स्त्री का नाम मनोवेगा था। मन्त्री का नाम बुद्धिसागर, उसकी स्त्री का नाम सोमा था। राजश्रेष्ठी का नाम समुद्रदत्त था, उसकी स्त्री का नाम सागरदत्ता था, पुत्र का नाम उमय और पुत्री का नाम जिनदत्ता था। जिनदत्ता, कौशाम्बी नगर में रहने वाले जिनदत्त नामक परम श्रावक को विवाह ने के लिये दी गयी थी। वह उमय मोहकर्म के उदय से सप्त व्यसनों से आक्रान्त हो गया था। माता पिता के द्वारा रोके जाने पर भी वह दुर्व्यसन को नहीं छोड़ता था। माता पिता ने कहा कि उपार्जित किये को कौन लाँघ सकता है ? वह उमय प्रतिदिन नगर के बीच चोरी करता और जुआ आदि व्यसनों का सेवन करता था। परद्रव्य का अपहरण करते हुए उमय को रात में यमदण्ड कोतवाल ने देख लिया परन्तु सेठ के आदर से उसे बहुत बार छोड़ दिया, मारा नहीं। यमदण्ड ने कहा- अहो ! एक उदर से उत्पन्न हुए सभी समान नहीं

होते। जिनदत्ता साध्वी हुई परन्तु यह उमय महापापी हुआ। जैसा कि कहा है-

तूमड़ी की लता में एक सदृश बहुत से कडुवे तूमे उत्पन्न होते हैं, शुद्ध बांस पर लटके हुए वे तूमे सरस ओर मधुर शब्द करते हैं। उनमें कुछ तूमे तो ऐसे होते हैं जो अन्य अज्ञानीजनों के द्वारा अपने शरीर परबांध लेने से उन्हें दुस्तर नदी आदि से पार कर देते हैं और उन्हीं तूमों में कुछ ऐसे होते हैं जो अज्ञानवश खाने में आने पर हृदय को जलाते हुए रुधिर को पी जाते हैं अर्थात् खाने वाले को मार डालते हैं ! भावार्थ-कडुवे तूमे लता में लगे-लगे जब सूख जाते हैं तब बाँस पर लटकते हुए मधुर शब्द करते हैं। उन तूमों में कुछ तूमे ऐसे होते हैं कि वे शरीर पर बाँध लिये जावें तो उनके प्रभाव से लोग गहरी नदियों को भी पार कर लेते हैं और कोई ऐसे होते हैं कि अज्ञान वश यदि खाने में आ जावें तो वे विष की तरह खाने वाले को मार डालते हैं। इसी प्रकार एक ही माता से उत्पन्न हुए बालकों में कोई परोपकारी होते हैं और कोई दुर्व्यसनों में आसक्त होकर दूसरों को दु:खदायक होते हैं॥।४०५॥

एक समय यमदण्ड कोतवाल ने उमय को राजा के हाथ में देकर कहा कि राजन् ! यह राजसेठ समुद्रदत्त का उमय नामक पुत्र है। हजारों बार रोके जाने पर भी चोरी नहीं छोड़ता है। अब आपके मन में जो हो वह कीजिये। राजा ने कहा कि इसमें समुद्रदत्त का एक भी गुण दिखायी नहीं देता अत: उसका पुत्र है यह कैसे जाना जाये। तदनन्तर समुद्रदत्त को बुलाकर राजा ने कहा कि हे समुद्रदत्त ! इस दुष्ट को अपने घर से निकाल दो अन्यथा इसके साथ तुम्हारी भी प्रतिष्ठा की हानि होगी। क्योंकि कहा है-दुर्जन मनुष्य की संगति से सज्जन मनुष्य को भी दोष लगता है- आपत्ति भोगनी पड़ती है क्योंकि रावण ने तो अपराध किया था। परन्तु समुद्र बन्धन को प्रात हुआ था॥।४०६॥

इस प्रकार से अनिष्ट मनुष्य की निकटता व्रती मनुष्यों को विपत्ति के लिये होती है क्योंकि देखो जलघड़ी के पास रहने से झालर ताड़ित होती है॥।४०७॥

राजा के वचन सुन, घर जाकर समुद्रदत्त अपनी स्त्री से कहता है कि हे प्रिये ! इसे शीघ्र ही निकाल देना चाहिये अन्यथा बहुत बुरा हो सकता है।

जैसा कि कहा है-रिश्वत देना, प्रेम करना, जुआ का धन, सुभाषित और चोर के धन का बटवारा इन्हें पण्डितजन शीघ्र ही जान लेते हैं॥।४०८॥और भी कहा है-

कुल की भलाई के लिये एक को छोड़ देना चाहिये, ग्राम की भलाई के लिये कुल को छोड़ देना चाहिये, देश की भलाई के लिये ग्राम को छोड़ देना चाहिये और अपनी भलाई के लिये पृथ्वी को छोड़ देना चाहिये॥।४०९॥

बहुत लोगों के साथ विरोध नहीं करना चाहिये क्योंकि बहुत जनों का जीतना कठिन होता है क्योंकि छटपटाते हुए भी हाथी को चींटियाँ खा जाती हैं॥।४१०॥

तदनन्तर समुद्रदत्त ने उमय को घर से निकाल दिया। माँ ने दुखी होकर कहा कि भवितव्यता बलवान् होती है। जैसा कि कहा है-

जिसकी भवितव्यता अच्छी है उसके हाथ में समुद्र के पर तट पर स्थित वस्तु भी आ जाती हैं और जिसकी भवितव्यता अच्छी नहीं है उसके हाथ में आयी हुई वस्तु भी नष्ट हो जाती है॥।४११॥

पश्चात् घर से निकल कर उमय, एक बनिजारे के साथ अपनी बहिन के पास कौशाम्बी नगरी गया परन्तु जिनदत्ता ने अपने भाई को देखकर तथा उसकी विरुद्ध वार्ता को सुनकर उसका पूर्ण आदर नहीं किया। जैसा कि कहा है-कौतुक से युक्त समाचार, निर्मल विद्या और कस्तूरी की सर्वश्रेष्ठ सुगन्ध ये तीनों पानी में पडी हुई तेल की बूँद के समान दुर्निवार रूप से फैल जाती है इसमें क्या आश्चर्य है ?॥४१२॥

उमय ने विचार किया कि मैं मन्दभाग्य हूँ। यहाँ भी आपत्ति मुझे नहीं छोड़ रही है। जैसा कि कहा है—

एक गंजे सिर वाला मनुष्य सूर्य की किरणों से मस्तक पर संतप्त होता हुआ छाया के लिये शीघ्र ही विल्ववृक्ष के नीचे गया परन्तु वहाँ ऊँचे से पड़ते हुए बहुत बड़े फल से उसका सिर शब्द के साथ फूट गया । ठीक ही है क्योंकि भाग्य रहित मनुष्य जहाँ जाता है प्राय: वही विपत्तियों का स्थान होता है॥४१३॥

और भी कहा है—

एक वेचारी मछली धीवर के कठोर हाथों की पकड़ से छूटी भी तो जाल में जा पड़ी और जाल से निकली तो बगुले के द्वारा निगल ली गयी । ठीक ही है क्योंकि भाग्य के विपरीत होने पर दु:ख से छुटकारा कैसे हो सकता है ?॥४१४॥

फिर भी खेद करते हुए उमय ने विचार किया कि अहो ! दूसरों का आश्रय लेना निश्चित ही कष्ट करने वाला है

जैसा कि कहा है—

नक्षत्र समूह जिसका परिवार है, जो औषधियों का राजा है, जिसका शरीर अमृतमय है और जो कान्ति से युक्त है ऐसा चन्द्रमा भी सूर्य बिम्ब को प्राप्त कर किरण रहित हो जाता है। ठीक ही है क्योंकि दूसरे के घर रहने वाला कौन सा मनुष्य लघुता-अनादरको प्राप्त नहीं होता है ?॥४१५॥

ऐसा विचार कर उमय लौटकर नगर के भीतर भ्रमण करता हुआ जिनमन्दिर गया। वहाँ श्रुत सागर मुनि को प्रणाम कर बैठ गया। जिनका चित्त दया के समुद्र के समान आचरण कर रहा था ऐसे मुनिराज उमय के आगे धर्म का उपदेश करने लगे।

अठारह दोषों से रहित जिनेन्द्रदेव निर्ग्रन्थ गुरु और अहिंसा लक्षण धर्म, इनका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। जैसा कि कहा है–

हिंसा से रहित धर्म, अठारह दोषों से रहित देव, निर्ग्रन्थ गुरु और शास्त्र में श्रद्धान होना सम्यक्त्व है॥४१६॥

वह सम्यक्त्व औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिक के भेद से तीन प्रकार का होता है। छह द्रव्य, पञ्चास्तिकाय, पञ्च ज्ञान और सात तत्त्व–इनका जो श्रद्धान करता है और अनुचरण करता है उसके सम्यक्त्व होता है।

क्योंकि कहा है–

अरिहन्त से बढ़कर देव नहीं है, दया के बिना धर्म नहीं है और निर्ग्रन्थता से बढ़कर तप नहीं है। यही सम्यक्त्व का लक्षण है॥४१७॥

वह सम्यक्त्व संवेगादि गुणों से युक्त होता है। जैसा कि कहा है–

संवेग, निर्वेग, निन्दा, गर्हा, उपशम, भक्ति, वात्सल्य और अनुकंपा, सम्यक्त्व के ये आठ गुण हैं॥४१८॥

स्थिरता, प्रभावना, शक्ति, जिनशासन में कुशलता और तीर्थं सेवा इन पाँच को सम्यक्त्व के आभूषण कहते हैं॥४१९॥

जो इस सम्यग्दर्शन से युक्त हैं उसे आठ मूलगुणों का पालन करना उचित है, क्योंकि वे श्रावक धर्म के मूलभूत प्रधान श्रेष्ठ व्रत हैं।

जैसा कि कहा है–

मद्यत्याग, मांसत्याग, मधुत्याग और पाँच उदुम्बर फलों का त्याग करना मुनियों ने इन्हें श्रावकों के आठ मूलगुण कहा है॥४२०॥

इनके सिवाय दर्शनप्रतिमा से सहित पुरुष को निरन्तर भयंकर नरक में ले जाने वाले निन्दनीय सप्त व्यसनों का त्याग करना चाहिये।

जैसा कि कहा है–

जुआ, मांस, मदिरा, वेश्या, शिकार, चोरी और परस्त्री सेवन ये ही सात महापाप हैं। ज्ञानी जीवों को इनका त्याग करना चाहिये॥४२१॥

व्यसन सात हैं और नरक भी सात हैं इसलिये ऐसा जान पड़ता है कि ये व्यसन अपनी समृद्धि के लिये मनुष्यों को एक-एक नरक की ओर खींचने वाले हैं ॥४२२॥

धर्मरूपी शत्रु को नष्ट करने के लिये पाप नामक राजा ने सप्त व्यसनों के द्वारा अपने सप्ताङ्ग राज्य को बलवान किया ॥४२३॥

तथा सम्यग्दर्शन से युक्त—दर्शन प्रतिमा के धारक पुरुष को छना हुआ जल पीना चाहिये। प्रत्येक दो घड़ी के भीतर जल छानना चाहिए क्योंकि समस्त जीवों की उत्पत्ति का कारण होने से जल में सम्मूर्च्छन जीव जल्दी उत्पन्न होते हैं।

यही कारण है कि जल के साथ सम्पर्क होने से अल्पकाल में ही सभी वस्तुओं में सम्मूर्च्छन जीवों की उत्पत्ति प्रत्यक्ष देखी जाती है इसलिए सदा ही दो घड़ी निकल जाने पर जल को छानकर पीना चाहिए। अन्यथा प्रवृत्ति करने से उस पुरुष के दया लक्षण वाला धर्म और आठ मूलगुण इनका परित्याग ही समझना चाहिए। जल के छाने बिना उसके इन सबका पालन करना निरर्थक है। तात्पर्य यह है कि जो जल छानकर नहीं पीता है उसके व्रत-नियम तथा संयम का पालन करना और सप्त व्यसनों का त्याग करना यह सब निरर्थक होता है इसलिए वस्त्र से पवित्र अर्थात् वस्त्र से छना हुआ जल पीना चाहिए यह सिद्ध होता है।

दर्शन प्रतिमा के धारक पुरुष को भोजन पान ग्रहण करते समय रक्त, मांस, मदिरा तथा क्रूर शब्द आदि सुनने का अन्तराय पालना चाहिये क्योंकि ये शब्द मन में उनका संकल्प उत्पन्न करने वाले हैं। अन्तराय होने पर भोजन और पानी उसी समय छोड़ देना चाहिए। जैसा कि कहा है—

मांस, रक्त, गीला चमड़ा, हड्डी और पीप के देखने से, मृत प्राणी के देखने से तथा छोड़ा हुआ अन्न ग्रहण में आ जाने से भोजन का त्याग करना चाहिये ॥४२४॥

तथा व्यसनों में आसक्त पुरुषों के साथ एक आसन पर बैठना, सोना, भोजन तथा संभाषण को जो करता है उसकी दर्शन प्रतिमा निर्मल-निर्दोष नहीं होती हैं। जैसा कि कहा—

हे विद्वज्जनो ! यदि उत्कृष्ट मार्ग पर ही चलने की इच्छा है तो मिथ्यादृष्टि-सम्यग्दर्शन से रहित, मार्ग में च्युत, मायावी, व्यसनी और दुष्टजनों का संग छोड़ो तथा उत्तम जनों का संग करो ॥४२५॥

ऐसा जानकर, जिनमत को मन में धारण कर तथा क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों को नष्ट कर जो दृढ़ सम्यग्दर्शन को धारण करते हैं वे

दर्शनप्रतिमा के धारक श्रावक कहे जाते हैं।

अब व्रत प्रतिमा कही जाती है—

पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत ये बारह व्रत कहलाते हैं। बादर और सूक्ष्म भेद के लिये हुए स्थावर तथा अनेकों भेदों से युक्त त्रस जीव मन, वचन, काय से रक्षा करने योग्य हैं। अधिक क्या, जिसमें सभी जीव सब प्रकार से अपने समान देखे जाते हैं वह प्रथम अहिंसाणुव्रत है। असत्य वचन का त्याग करना दूसरा सत्याणुव्रत है। चोरी का त्याग करना तीसरा अचौर्याणुव्रत है। स्वस्त्री में संतोष रखना तथा परस्त्री का त्याग करना चौथा ब्रह्मचर्याणुव्रत है और मन में संतोष धारण कर धन-धान्य तथा चौपाये आदि परिग्रहों का परिमाण करना पाँचवाँ परिग्रहपरिमाणाणुव्रत है।

प्रसिद्ध पर्वत, नदी, सागर, झील, वन, जनपद, देश तक आने जाने की मर्यादा निश्चित कर लेना अथवा योजनों की संख्या निश्चित कर दशों दिशाओं में आने जाने का नियम करना तथा अपनी शक्ति के अनुसार योग निरोध करना पहला गुणव्रत है। अब दूसरे गुणव्रत अनर्थदण्ड त्याग का वर्णन किया जाता है। निष्प्रयोजन कार्य करना अनर्थदण्ड कहलाता है। यह पाँच प्रकार का होता है। उसमें पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पतिकायिक इन पाँच स्थावरों तथा त्रसजीवों की स्वयं हिंसा करना और दूसरों को उपदेश देना यह पाप हेतु-पापोपदेश नामका अनर्थदण्ड है। तथा पशुपालन, खेती करना, व्यापार करना तथा परस्त्रियों का संयोग कराना आदि कार्यों का उपदेश देना यह भी पापोपदेश नामका अनर्थदण्ड है। मुर्गा, मयूर, बिलाव, चीता, नेवला तथा साँप आदि का पालन करना और उनकी क्रीड़ा करना यह भी अनर्थदण्ड है। ये ऊपर कहे हुए सब कार्य करना प्रथम अनर्थदण्ड है। अपने पास के शस्त्र दूसरे के द्वारा माँगे जाने पर देना तथा बिक्री के लिये उनका ग्रहण करना हिंसादान नामका द्वितीय अनर्थदण्ड है। दूसरे के दोष कहने तथा परस्त्री में अपने मन की इच्छा करना अपध्यान नामका तृतीय अनर्थदण्ड है। रागद्वेष की बढ़ाने वाली कथाओं का सुनना दुःश्रुति नामका चतुर्थ अनर्थदण्ड है। तथा विष, अग्नि, रस्सी, मैन, लौहा, लाख और नील आदि का देना तथा प्रयोजन के बिना ही फल, पत्र, पुष्प आदि का बिखेरना और घूमना-घुमाना यह प्रमादचर्या नामका पंचम अनर्थदण्ड है। इसका त्याग करना अनर्थदण्डव्रत नामका द्वितीय गुणव्रत कहलाता है।

पुष्प, विलेपन, भूषण, वस्त्र और शय्या आदि भोगोपभोग की वस्तुओं का अपनी शक्ति के अनुसार परिमाण करना तृतीय गुणव्रत है।

काय, वचन और मन का निरोध करना, समस्त पाप कार्यों का त्याग करना, सुख दु:ख और संयोग-वियोग में सम्भावना रखना तथा त्रिकाल-तीनों संध्याओं में देववन्दना करना सामायिक नामका पहला शिक्षाव्रत है। एक माह के बीच दो अष्ठमी और दो चतुर्दशी इस प्रकार चार पर्व आते हैं इन चारों पर्वों में शक्ति के अनुसार जो उपवास, अनुपवास, एकासन अथवा रसपरित्याग किया जाता है वह प्रोषध नामका दूसरा शिक्षाव्रत है। अपनी शक्ति के अनुसार श्रद्धापूर्वक पात्र के लिये जो आगमोक्त चार प्रकार का आहारदान दिया जाता है वह अतिथि संविभाग नामका तीसरा शिक्षाव्रत है। मरण के समय नि:स्पृह होकर, जीवन व मृत्यु के प्रति समभाव रखना अर्थात् राग-द्वेषादि का वर्धक कोई भी भाव न रखना सल्लेखना नामका चौथा शिक्षाव्रत है। शरीर व कषाय को कृश करते धर्मादि शुभ ध्यान संलग्न रहना, वा धर्म रक्षा व संयम रक्षा के लिए शरीर का परित्याग करना सल्लेखना व्रत है। तथा सूर्य के अस्त न होने पर अर्थात् सूर्य के रहते हुए भोजन करना चाहिये। इतना सब होने पर भी यदि नवनीत का त्याग नहीं करता है तो जीवदया, ब्रह्मचर्य, पञ्चोदुम्बर फलों का त्याग, अभक्ष्य त्याग और सात व्यसनों का त्याग, यह सब निष्फल होता है। अनस्तमितव्रत सहित तथा दर्शनप्रतिमा के साथ इन बारह व्रतों का जो पालन करता है वह व्रत प्रतिमा से युक्त होता है। इस प्रकार व्रत प्रतिमा का निरूपण हुआ।

सामायिक आदि प्रतिमा का कथन करते हैं

शत्रुओं और मित्रों में समभाव करके क्रोध, मान, माया और लोभ नामक चार कषायों को जीतकर चैत्यालय अथवा घर में पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर काय, वचन और मन की शुद्धिपूर्वक जो तीन कालों में पञ्च परमेष्ठियों की वन्दना करता है उसके सामायिक नाम की तीसरी प्रतिमा होती है।

सप्तमी और त्रयोदशी के दिन एकासन कर तथा उपवास का नियम लेकर अष्टमी और चतुर्दशी के दिन जिन मन्दिर में रहना चाहिये। पश्चात् नवमी और पञ्चदशी के दिन प्रात:काल जिनवन्दनादि कर अपने घर जाकर तथा अपनी शक्ति के अनुसार पात्रदान देकर स्वयं भोजन करना चाहिये। साथ ही उस पारणा के दिन भी एकाशन करना चाहिये। यही प्रोषधप्रतिमा कहलाती है।

सचित्त फल, पत्र, पुष्प, शाक तथा शाखा आदि का जिसमें त्याग किया जाता है वह सचित्तत्यागप्रतिमा है।

रात्रि में औषध पान तथा पानी आदि चारों प्रकार के आहारों का जिसमें

त्याग किया जाता है और दिन में मैथुन का त्याग किया जाता है वह रात्रिभुक्ति त्यागव्रत अथवा दिवा मैथुन त्याग व्रत नामक प्रतिमा है।

सर्वथा स्त्री का त्याग करना ब्रह्मचर्य प्रतिमा है। देवी, मानुषी, तिरश्ची, लेपमयी, काष्ठमयी, शिलामयी तथा चित्रलिखित भी स्त्री को देखकर जो काय, वचन और मन से उसकी इच्छा नहीं करता है उसके ब्रह्मचर्य प्रतिमा होती है।

घर सम्बन्धी समस्त आरम्भों को छोड़कर कषाय रहित हो, मन में सन्तोष करना चाहिए। ऐसा पुरुष आरम्भत्यागी होता है। द्रव्य का परिग्रह-पास में रुपया पैसा आदि रखना मोह को उत्पन्न करता है, मोह से राग-द्वेष की उत्पत्ति होती है, राग-द्वेष के कारण आर्त्तध्यान से मरण होता है और आर्त्तध्यान के होने से नरकगति प्राप्त होती है इसलिये मात्र वस्त्र को छोड़कर अन्य सभी द्रव्य समूह का काय, वचन और मन से त्याग करना चाहिये। यह परिग्रहत्यागप्रतिमा है।

अपने शरीर के विषय में भी ममत्व भाव को छोड़ जो घर का त्याग कर सदा जिन मन्दिर में रहता है और घर सम्बन्धी कार्यों के विषय में पूछने वाले पुत्रादि को जो अनुमति भी नहीं देता है। जो जिन मन्दिर में रहता हुआ धर्मपाठ अथवा धर्मश्रवण करता है, धर्मध्यान से दिन-रात व्यतीत करता है, विकथाएँ न स्वयं करता है और न सुनता है, उसके वह अनुमतिविरति नाम की दशवीं प्रतिमा होती है।

उद्दिष्टत्याग प्रतिमा दो प्रकार की होती है। प्रथम प्रकार में लंगोट के अतिरिक्त एक वस्त्र रखता है, सिर पर केशों का मुण्डन करता है और भिक्षा से चर्या करता है।

जैसा कि कहा है-

जो पात्र लेकर दातार के घर में प्रवेश करता है, आँगन में खड़ा होकर तथा 'धर्मलाभ' कहकर साथ ही भिक्षा की याचना करता है अर्थात् 'धर्मलाभ' इस शब्द के द्वारा ही भिक्षा प्राप्त करने का अभिप्राय प्रकट करता है॥४२६॥

जिसका यह पात्र होता है चर्या के अनन्तर वह उसी को सौंप दिया जाता है। यह अनेक भिक्ष क्षुल्लक की विधि है जो एक भिक्ष क्षुल्लक होता है वह एक ही घर श्रावक द्वारा पडगाहा जाकर आहार ग्रहण करता है। जिस पुरुष के लंगोट मात्र का परिग्रह होता है, वह पिच्छी ग्रहण करता है, शिर पर केशों का लोंच कराता है और क्षुल्लक की तरह पात्र लेकर भिक्षा के लिये भ्रमण नहीं करता है। किन्तु मुनियों के साथ चर्या के लिये निकलता है और मुनियों का आहार हो चुकने पर हस्तपुट में भोजन करता है, बड़े अन्तराय का पालन करता है, तथा पाँच समितियों और तीन गुप्तियों से

संयुक्त होता है। शक्त्यनुसार बारह तपों में लीन रहता है, आर्त्त और रौद्रध्यान से दूर रहता है, दुर्गति के कारणभूत वचन भी नहीं बोलता है, बारह भावनाओं का प्रति समय चिन्तन करता है, इच्छकार करता है और परमात्मा तथा उनके वचनों की सदा स्तुति करता है। इस प्रकार जिनेन्द्र भगवान् ने और भी जो विधि कही है उस सबका अपनी शक्ति के अनुसार जो पालन करता है वह उत्तम श्रावक होता है। अन्यथा 'श्रावक है 'यह कथन उपलक्षण मात्र होता है अर्थात् श्रावक के धर्म को करता नहीं है किन्तु 'मैं श्रावक हूँ श्रावक हूँ' यही कहता है। वह महामिथ्यादृष्टि है ऐसा जानना चाहिये। इस प्रकार उद्दिष्टविरतिनामकी ग्यारहवीं प्रतिमा है।

यहाँ प्रकरणोपयोगी कुछ श्लोक हैं-

जो जिन शासन में स्थित- सहधर्मी बन्धुओं के विषय में अपनी शक्ति के अनुसार वात्सल्य नहीं करते हैं वे बहुत पापों से आवृत्तात्मा-संयुक्त होते हुए धर्म से विमुख होते हैं ॥४२७॥

जिनेन्द्र भगवान् के उपदेश से करुणा रूपी अमृत के द्वारा भरे हुए जिनके चित्त में जीवदया नहीं है उनके धर्म कैसे हो सकता है ? ॥४२८॥

जहाँ प्राणिवध धर्म कहलाता है, वहाँ अधर्म कैसा होता है ? और जहाँ ऐसे मनुष्य होते हैं, वहाँ पिशाच कैसे होते हैं ? ॥४२९॥

जो पिशाचों को पूज्य मानते हैं, कोरियों (विषयाभिलाषी व भोगियों) को गुरु समझते हैं, हिंसा को धर्म कहते हैं और विषय सेवन से मोक्ष मानते हैं अरे मूर्ख ! उन मनुष्यों ने उस मनुष्य जन्म को व्यर्थ खो दिया जो अत्यन्त दुर्लभ है तथा समस्त भवों में पवित्र भव है॥४३०॥

जिन पापी छिपे नास्तिकों ने हिंसा को पुण्य के लिये माना है उन्होंने जीवित रहने के लिये विष को अन्न माना है और प्रकाश के लिये अन्धकार को अर्जित किया है॥४३१॥

प्राणियों को अशान्ति उत्पन्न कर शान्ति की इच्छा कौन करता है। धनिकों को नमक देकर क्या बदले में कपूर प्राप्त किया जा सकता है ? अर्थात् नहीं ॥४३२॥

प्राणियों को अभयदान देने वाला जो मनुष्य उनकी रक्षा करता है भवभव में उसकी रक्षा होती है। ठीक ही है जो दिया गया है वही प्राप्त होता है॥४३३॥

अहो ! खेद है कि मूढ मनुष्य की पण्डिताई तो देखो, वह चिन्तामणि को तो छोड़ता है और काँचमणि को ग्रहण करना चाहता है, मत्त हाथी को छोड़ता है और गधे को ग्रहण करता है तथा हिंसा को विस्तृत करता है परन्तु करुणा को

विस्तृत नहीं करता है॥४३४॥

जहाँ जीव है वहाँ शिव है और समस्त जगत् विष्णुमय है ही इस प्रकार चतुर शैवों और वैष्णवों ने भी अहिंसा को विस्तृत किया है॥४३५॥

हिंसक को धर्म, कामी को शास्त्र, कपटी को सत्य और तृष्णावान् को रति कैसे प्राप्त हो सकती है॥४३६॥

क्योंकि दया, धर्म रूपी वृक्ष की जड़ है, व्रतों में प्रथम है, सम्पदाओं का स्थान है और गुणों का भण्डार है इसलिये विवेकी मनुष्यों को अवश्य ही स्वीकृत करनी चाहिये॥४३७॥

जिनेन्द्र भगवान ने मुनियों और श्रावकों के समस्त व्रत एक अहिंसा की प्रसिद्धि के लिए ही कहे हैं॥४३८॥

मुनिराज ने पुनः कहा-इस जीव ने संसार में परिभ्रमण करते हुए बड़े कष्ट से मनुष्यभव तथा जैनधर्म प्राप्त किया है। इसलिए रात्रि में यदि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय आदि जीवों से मिले हुए अन्न, पान, खाद्य और स्वाद्य अथवा लेह्य के भेद से चार प्रकार का आहार ग्रहण कर यदि नरक चला गया तो फिर मनुष्यभव का पाना कठिन है। कहा भी है-

रात्रि भोजन के दोष को जानने वाला जो मनुष्य दिन के आदि और अन्त की दो घड़ियों को छोड़ता है अर्थात् उनमें भोजन नहीं करता है वह पुण्य का पात्र होता है॥४३९॥

भोजन के समय मौन रखने से ज्ञान की विनय होती है और अभिमान की रक्षा होती है इसलिये मुनिराज उसका उपदेश देते हैं॥४४०॥

मल निवृत्ति, मूत्रत्याग, स्नान, परमेष्ठियों का पूजन, भोजन, संभोग और स्तुति ये सात कार्य मौन सहित करना चहिये॥४४१॥

रात्रि में भोजन करने वाला मनुष्य सदा कुरूप, विकलाङ्ग, अल्पायु, रोगपीड़ित, भाग्यहीन और नीचकुली होता है॥४४२॥

रात्रि भोजन करने से मनुष्य उलूक, काक, विलाव, गीध, सांवर, सूकर, साँप, बिच्छू तथा गोह होते हैं॥४४३॥

जो मनुष्य इस जगत् में रात दिन खाता ही रहता है वह सींग और पूँछ से रहित पशु ही है॥४४४॥

जो मनुष्य दिन को छोड़कर रात्रि में ही भोजन करते हैं वे मूर्ख मणि को

छोड़कर काँच को ग्रहण करते हैं॥४४५॥

जो अनस्तमित व्रत का पालन करता है वह स्वर्गलोक में देव होता है, वहाँ से आकर इक्ष्वाकु आदि क्षत्रिय वंशों तथा वैश्य वंशों में उत्पन्न होकर दिव्य भोगों का अनुभव करता है पश्चात् तप करके अरिहन्त पदवी को प्राप्त करता हुआ सिद्ध पद को प्राप्त होता है। जैसा कि कहा है-

जो स्वभाव से रात्रिभोजन त्याग करता है वह अपने कुल का भूषण होता हुआ त्रिलोकीनाथ की संपदा को प्राप्त होता है॥४४६॥

देवभक्ति, गुरूपासना, सर्वजीवानुकम्पा, सत्संगति और आगम श्रवण के द्वारा मनुष्य जन्म का फल प्राप्त करो॥४४७॥

देखो, विष की बूँद से दूषित अमृत की गगरी छोड़ने के योग्य होती है क्योंकि छोटा सा दोष भी बड़े-बड़े गुणों को दूषित कर देता है॥४४८॥

इस प्रकार श्रुतसागर महामुनि के मुख कमल से विनिर्गत धर्म को सुनकर, सप्त व्यसन का त्याग कर तथा सम्यग्दर्शनपूर्वक श्रावक के व्रत ग्रहण कर वह उमय श्रावक हो गया। इसके अतिरिक्त उसने अज्ञातफल के न खाने का व्रत भी ले लिया। ठीक ही है गुणीजनों के सङ्ग से गुणहीन मनुष्य भी गुणी हो जाते हैं।

तदनन्तर भाई उमय को सन्मार्ग में स्थित जानकर जिनदत्ता उसे बड़े सम्मान से अपने घर ले गयी तथा दान के द्वारा उसने उसे संतुष्ट किया और लोक में उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाई। जैसा कि कहा है-

न्यायमार्ग में प्रवृत्त मनुष्य की तिर्यञ्च भी सहायता करते हैं और कुमार्ग में चलने वाले को सगा भाई भी छोड़ देता है॥४४९॥

उत्तम मनुष्यों के साथ संगति, विद्वानों के साथ वार्तालाप और अलोभी मनुष्यों के साथ मित्रता को करने वाला कभी दुखी नहीं होता है॥४५०॥

और भी कहा है-गेंद हाथ के आघातों से नीचे गिर कर भी ऊपर की ओर उछलती है। ठीक ही है क्योंकि सत्पुरुषों की विपत्तियाँ प्रायः अस्थायी होती हैं॥४५१॥

एक समय, उज्जयिनी नगरी से कुछ बनजारे सेठ कौशाम्बी नगरी आये। उन्होंने उमय को सन्मार्ग में स्थित देख उसकी खूब प्रशंसा की। तुम धन्य हो, तुम उत्तम मनुष्यों की संगति से उत्तम हो गये हो ..... इस तरह अनेक प्रकार से उसकी स्तुति की।

जैसा कि कहा है-हे तात् ! हीन मनुष्यों की संगति से बुद्धि हीन हो जाती है, समान मनुष्यों की संगति से समता की प्राप्ति होती है और विशिष्ट मनुष्यों की

संगति से विशिष्ट हो जाती है॥४५२॥

और भी कहा है-

संतप्त लोहे पर स्थित पानी का नाम भी सुनायी नहीं देता। वही पानी कमलिनी के पत्र पर स्थित होकर मोती के समान सुशोभित होता है और स्वाति नक्षत्र में समुद्र की सीप में जाकर मोती हो जाता है। ठीक ही है क्योंकि मनुष्य के अधम, मध्यम और उत्तम गुण प्राय: संसर्ग से होते हैं॥४५३॥ और भी कहा है-

जिस प्रकार चन्द्रमा के बिना रात्रि और कमल के बिना सरोवर सुशोभित नहीं होता उसी प्रकार धर्म के बिना सदा जीव सुशोभित नहीं होता॥४५४॥

तदनन्तर बहुत सा-बिक्री का सामान लेकर उमय उन बनजारों के साथ अपने नगर की ओर चला। किसी अन्य समय जब नगर अत्यन्त निकट आ गया तब वह माता-पिता के दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा से कुछ लोगों के साथ आगे निकल गया। रात्रि में प्रमादवश वह मार्ग छोड़कर बड़ी भारी अटवी में जा पहुँचा। प्रात:काल सूर्योदय हुआ। तदनन्तर अटवी में घूमते हुए, क्षुधा आदि से पीड़ित मित्रों ने रूप, रस, गन्ध, वर्ण और माधुर्य से श्रेष्ठ, मृत्यु के कारण भूत किंपाक विषवृक्ष के फल देखकर खाये। पश्चात् उन्होंने वे फल उमय को दिये। उमय ने कहा-ये फल किस नाम के हैं ? मित्रों ने कहा कि नाम से क्या प्रयोजन है ? इस समय हम लोगों को सन्तुष्ट करने के लिये ये फल अच्छे दिखाई देते हैं। इसलिये कडुवे, नीरस, दुर्गन्धयुक्त तथा स्वाद रहित अन्य फलों को छोड़कर तथा इन्हें खाकर अपने आपको संतुष्ट करो। उमय ने कहा- अज्ञात फलों के भक्षण के विषय में मेरा नियम है अर्थात् मैं अनजाने फल नहीं खाता हूँ। इसलिये मैं इन्हें नहीं खाऊँगा। इतना कहकर उसने वे फल नहीं खाये। पश्चात् कुछ समय के भीतर वे सब मित्र मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े। उनके शोक से उमय दु:खी होकर कहता है- अहो, ऐसे फल के बीच में कालकूट विष है, यह कौन जानता है ?

तदनन्तर उमय के व्रत सम्बन्धी निश्चय की परीक्षा के लिये सुन्दर रूप रख वन देवता ने आकर कहा-हे सत्पुरुष ! इस कल्पवृक्ष के फल क्यों नहीं खाये ? तुम्हारे मित्रों ने जो फल खाये हैं वे विषवृक्ष के ही फल हैं। यह कल्पवृक्ष है, इस वृक्ष के फल पुण्य के बिना प्राप्त नहीं होते। इस वृक्ष के फलों को जो खाता है वह सर्वरोगों से रहित होता है तथा कभी मरता नहीं है, दु:ख नहीं देखता है, ज्ञान के द्वारा चराचर सहित लोक को जानता है। मैं पहले बहुत वृद्धा थी। इन्द्र ने इसके फलों की रक्षा के लिये मुझे यहाँ रक्खा है। इसके फल खाने से मैं नव यौवनवती हो गयी हूँ।

यह वचन सुनकर उमय ने कहा कि हे बहिन ! अज्ञात फल के भक्षण के विषय में मेरा नियम है अर्थात् मैं अज्ञात फल नहीं खाता हूँ। इसलिये मुझे इस फल का नाम बताओ। वन देवता कहती है कि मैं नाम नहीं जानती हूँ। उमय ने कहा- तो फिर इन अतिशयों से क्या प्रयोजन है ? किन्तु जो कुछ ललाट में लिखा है वही होता है अन्य नहीं। बहुत कहने से क्या लाभ है ?

उमय के इस धैर्य को देखकर वन देवता ने कहा-हे पथिक ! तुम्हारे ऊपर मैं संतुष्ट हूँ। वर माँगो-उसने कहा-यदि संतुष्ट हो तो हमारे साथियों को उठा दो और उज्जयिनी का मार्ग बतला दो। वन देवता ने कहा -ऐसा हो। जैसा कि कहा है-

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि और पराक्रम ये छः जिसके पास हैं देव भी उसके वश रहते हैं॥४५५॥

और भी कहा है-

जो उत्साह से सहित है, शीघ्रता से कार्य करता है, कार्य करने की विधि को जानता है, व्यसनों में अनासक्त है, शूरवीर है, कृतज्ञ है और दृढ मित्रता वाला है। लक्ष्मी, निवास के हेतु उस पुरुष के समीप स्वयं पहुँचना चाहती है॥४५६॥

गुण, दूर भी रहने वाले मनुष्यों का दूतपन करते हैं क्योंकि केतकी की गन्ध को सूँघ कर भ्रमर स्वयं ही उसके पास पहुँच जाते हैं॥४५७॥

तदनन्तर देवता के प्रभाव से सब उठकर खड़े हो गये। पश्चात् उन सब साथियों ने कहा कि हे उमय ! तुम्हारे प्रसाद से हम सब जीवित हुए। तुम्हारे व्रत का महात्म्य आज हम लोगों ने देख लिया। तुम्हारे लिये कोई भी कार्य अगम नहीं है। तदनन्तर उस वन देवता ने नगर का मार्ग भी दिखा दिया जिससे क्रमपूर्वक अपने साथियों के साथ उमय अपने घर आ गया।

उत्तम आचरण से युक्त उमय को देखकर तथा उसके पूर्व वृत्तान्त को सुनकर पिता, माता, राजा, मन्त्री, स्वजन और परिजन आदि ने उसकी खूब प्रशंसा की। अहो ! यह उमय धन्य है, महापुरुषों के संयोग से पूज्य हो गया है। जैसा कि कहा है-

उत्तम पुरुषों के साथ संगति करने से मनुष्य गौरव को प्राप्त होता है क्योंकि फूलों से सहित तन्तु भी मस्तक से धारण किया जाता है॥४५८॥

दूसरे दिन नगर देवता ने आकर सब नगरवासियों की साक्षीपूर्वक विक्रिया से एक रत्नमण्डप और उसके बीच सिंहासन बनाया तथा उसके ऊपर उमय को बैठाकर अभिषेक पूर्वक उसकी पूजा की- सम्मान किया, पञ्चाश्चर्य किये। यह सब देख राजा ने कहा कि धर्म ही सब आपत्तियों को हरता है अन्य नहीं। जैसा कि कहा है-

धर्म, इहलोक तथा परलोक में मनुष्य के लिये सुखस्वरूप है। धर्म अन्धकार में सूर्य है। धर्म, पण्डितों की सब आपत्तियों का शमन करने में समर्थ है। धर्म, निधियों का खजाना है। धर्म, बन्धुरहित का बन्धु है। धर्म, लम्बे मार्ग में साथ चलने वाला मित्र है और धर्म, संसार रूपी विशाल मरुस्थल में कल्पवृक्ष है, वास्तव में धर्म से बढ़कर अन्य कुछ नहीं है॥४५९॥

तदनन्तर अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने पद पर स्थापित कर नरपाल राजा, मदनदेव मन्त्री, राजसेठ समुद्रदत्त, उमय पुत्र तथा अन्य बहुत लोगों ने सहस्रकीर्ति मुनिराज के समीप तप ग्रहण कर लिया। कितने ही श्रावक और कितने ही भद्रपरिणामी हो गये।

रानी मनोवेगा, मंत्री की स्त्री सोमा, राजसेठ की पत्नी सागरदत्ता तथा अन्य बहुत स्त्रियों ने अनन्तमयी आर्यिका के समीप तप ग्रहण किया। कुछ स्त्रियाँ श्राविका हुई। शेष ने यथा शक्ति एक देश व्रत ग्रहण किये।

पश्चात् कनकलता ने कहा कि हे स्वामिन् ! यह सब मैंने प्रत्यक्ष देखा है। तदनन्तर मुझे अत्यन्त दृढ़ सम्यक्त्व हुआ है और धर्म में मेरी बुद्धि सुदृढ़ हुई है। अर्हद्दास ने कहा कि हे प्रिये ! तुमने जो देखा है उन सबकी मैं श्रद्धा करता हूँ, इच्छा करता हूँ और रुचि करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी ऐसा ही कहा। सेठ ने कुन्दलता के प्रति कहा कि हे कुन्दलते ! तुम भी निश्चल चित्त होकर नृत्यादिक करो। यह सुनकर कुन्दलता ने कहा कि यह सब असत्य है।

यह सुनकर राजा, मन्त्री और चोर ने अपने मन में विचार किया कि अहो ! कनकलता ने जिसे प्रत्यक्ष देखा है उसे यह पापिनी कुन्दलता असत्य बतलाती है। प्रभात समय इसे गधे पर बैठाकर इसका निग्रह करेंगे-इसे दण्ड देवेंगे। चोर ने पुनः अपने मन में विचार किया कि जो अविद्यमान दोष का निरूपण करता है वह नीचगति का पात्र होता है। जैसा कि कहा है-

दूसरे के विद्यमान गुणों को नष्ट नहीं करना चाहिये और न अपने अविद्यमान गुणों का वर्णन करना चाहिये। क्योंकि ऐसा करने वाला मनुष्य नीच गोत्र से युक्त होता है॥४६०॥

सम्यक्त्व को प्राप्त करने वाली विद्युल्लता की कथा

तदनन्तर अर्हद्दास सेठ विद्युत्लता से कहते हैं कि हे प्रिये ! आप अपने सम्यक्त्व की प्राप्ति का कारण कहो। पश्चात् वह कहती है-

भरतक्षेत्र में एक सूर्य कौशाम्बी नामकी नगरी है। वहाँ सुदण्ड नाम का राजा

राज्य करता है। उसकी रानी का नाम विजया है। सुमति सुदण्ड का मन्त्री है। मन्त्री की स्त्री का नाम गुणश्री है। राजसेठ का नाम सूरदेव है और उसकी स्त्री का नाम गुणवती है।

एक समय सूरदेव दूसरे देश को गया था। वहाँ से वह व्यापार के लिये सुन्दर घोड़ी लाया। उसने वह घोड़ी सुदण्ड राजा के लिये दी। राजा ने बदले में बहुत धन देकर सूरदेव का बहुत सत्कार किया तथा उसकी प्रशंसा की। एक समय शास्त्रोक्त विधि से एक माह का उपवास करने वाले गुणसेन भट्टारक का लाभ सूरदेव को हुआ। जिससे उसने उन्हें आहारदान दिया सत्पात्रदान के प्रभाव से देवों ने सूर्यदेव के घर पञ्चाश्चर्य किये। उसी नगर में सागरदत्त नामका दूसरा सेठ रहता था। उसकी स्त्री का नाम श्रीदत्ता था। उनके समुद्रदत्त नामका पुत्र था। उस समुद्रदत्त ने सूरदेव के द्वारा दिये हुए सत्पात्र के आहारदान के फल का अतिशय देखकर मन में विचार किया कि अहो ! मैं बहुत ही अधम, भाग्यहीन और निर्धन हूँ अत: कैसे दान करूँ। इसलिये देशान्तर में जाकर सूरदेव की भाँति द्रव्योपार्जन कर मैं भी दान करूँगा क्योंकि दान के बिना कुछ भी नहीं है। जैसा कि कहा है- जगत् में जिसके पास धन है उसी के मित्र हैं। जिसके पास धन है उसी के भाई-बन्धु हैं, जिसके पास धन है वही पुरुष है और जिसके पास धन है वही जीवित है॥४६१॥

और भी कहा है-इस लोक में धनी मनुष्यों के लिये दूसरे लोग भी आत्मीय जनों के समान आचरण करते हैं और दरिद्र मनुष्यों के लिये आत्मीय जन भी उसी क्षण दुर्जन के समान आचरण करने लगते हैं॥४६२॥ और भी कहा है-

इसी संसार में दरिद्र मनुष्य के लिये सदा सूतक रहता है। जैसा कि कहा है-

कोई पथिक किसी स्त्री से कहता है-हे सुन्दरी ! मुझ पथिक के लिये शिक्षा देओ। स्त्री कहती है कि हाय-हाय आपकी वाणी निष्फल जा रही है। पथिक ने कहा कि क्यों ? कारण कहो। स्त्री कहती है कि मेरे सूतक है। पथिक कहता है कि कितना काल हो गया ? स्त्री कहती है कि एक माह हो गया। पथिक कहता है तब तो शुद्धि हो गयी। स्त्री कहती है कि जब तक उत्पन्न हुए बालक की मृत्यु नहीं होती तब तक शुद्धि नहीं हो सकती। पथिक कहता है कि कौन बालक उत्पन्न हुआ है ? स्त्री कहती है कि मेरे धन रूप प्राणों को हरने वाला दारिद्रय नाम का पुत्र हुआ है॥४६३॥

कोई अपमानित-उपेक्षित मनुष्य कहता है कि हे दारिद्रय ! तुम्हें नमस्कार हो क्योंकि तुम्हारे प्रसाद से मैं सिद्ध हो गया क्योंकि सिद्ध के समान मैं तो सबको देखता हूँ परन्तु मुझे कोई नहीं देखता॥४६४॥

जो अवस्था से वृद्ध है, तप से वृद्ध हैं तथा अनेक शास्त्रों को जानने से वृद्ध

हैं वे सब किंकर होकर धनवृद्ध के द्वार पर खड़े रहते हैं॥४६५॥

ऐसा विचार कर समुद्रदत्त चार मित्रों के साथ मंगलदेश की ओर चला। मार्ग में चलते समय तीन मित्रों ने समुद्रदत्त से कहा कि अहो समुद्रदत्त ! दूरवर्ती अन्य देश में किस लिये चल रहे हैं। उसने कहा कि हम व्यवसायी मनुष्यों के लिये कुछ भी दूर नहीं है। जैसा कि कहा है-

समर्थ मनुष्यों के लिये अधिक भार क्या है ? व्यवसायी-उद्योगी मनुष्यों के लिये दूर क्या है ? उत्तम विद्या से युक्त मनुष्यों के लिये विदेश क्या है ? और प्रिय बोलने वालों के लिये दूसरा कौन है॥४६६॥और भी कहा है-

व्यवसायी मनुष्य के लिये मेरू का शिखर अधिक ऊँचा नहीं है, रसातल नीचा नहीं है और महासागर दूर नहीं है॥४६७॥

अपनी स्त्री के सुख में आसक्त हुआ जो पुरुष, अनेक आश्चर्यों से भरी हुई पृथिवी को नहीं देखता है वह कूपमण्डूक है॥४६८॥ और भी कहा है

जो परदेश के भय से डरते हैं, बहुत आलसी हैं तथा प्रमादी हैं ऐसे कौए, कापुरुष और मृग अपने देश में मृत्यु को प्राप्त होते हैं॥४६९॥

तदनन्तर क्रम से पलाशग्राम में जाकर तथा घोड़ों की प्रचुरता देखकर समुद्रदत्त ने मित्रों के साथ कहा कि हे मित्रो ! इस देश में जहाँ कहीं भी जाकर अपना माल बेचना चाहिये और खरीदने योग्य वस्तु खरीद कर तीन वर्ष के भीतर इसी स्थान पर आ जाना चाहिये। तदनन्तर स्थान की सीमा कर अन्य तीनों मित्र चले गये। समुद्रदत्त मार्ग में थक गया था इसलिये वह कुछ समय तक वहीं ठहर गया। जैसा कि कहा है-

वास्तव में, मूर्ख होना कष्ट है, यौवन में दरिद्र होना कष्ट है तथा दूसरे के घर निवास करना और परदेश में भ्रमण करना सबसे अधिक कष्ट है॥४७०॥

उस ग्राम में घोड़ों का व्यापार करने वाला एक अशोक नामका गृहस्थ रहता था। उसकी स्त्री का नाम वीतशोका था और पुत्री का नाम कमलश्री था। वह अशोक, घोड़ों की रक्षा के लिये एक नौकर को खोज रहा है। यह समाचार सुनकर समुद्रदत्त, अशोक के पास जाकर कहता है कि मैं तुम्हारे घोड़ों की रक्षा करूँगा। मुझे क्या देओगे ?

जैसा कि कहा है-गुण और गुरूत्व तभी तक रहते हैं जब तक पुरुष किसी से कुछ चाहता नहीं है। यदि पुरुष कुछ चाहने लगता है तो गुण कहाँ और गौरव कहाँ ?-दोनों नष्ट हो जाते हैं॥४७१॥ और भी कहा है-

'देहि'-देओ यह वचन सुनकर शरीर में रहने वाले पाँच देवता-लक्ष्मी, लज्जा, धृति, कीर्ति और बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाते हैं- शरीर से बाहर निकल जाते हैं॥४७२॥

अशोक ने कहा-दिन में दो बार भोजन, छह मास में एक धोती जोड़ा, एक कम्बल और एक जूतों का जोड़ा देवेंगे तथा तीन वर्ष के बाद घोड़ों के समूह में अपने मन चाहे दो घोड़े ले लेना। समुद्रदत्त ने 'तथास्तु' कहकर स्वीकृत किया। इस प्रकार विनय सहित कहकर समुद्रदत्त घोड़ों के समूह की रक्षा करने लगा।

जैसा कि कहा है-सेवक, उन्नति के लिये नम्रीभूत होता है, जीवित रहने के लिये प्राण छोड़ता है और सुख के लिये दुखी होता है। वास्तव में सेवक के सिवाय दूसरा मूर्ख कौन है ?॥४७३॥

सेवावृत्ति करने पर पुरुषों का सत्यधर्म, सज्जनता के साथ दूर चला जाता है। धर्म, चित्त से हटकर दया के साथ देशान्तर को प्रयाण कर जाता है और पाप, शाप से ही मानों नीच आचरण के साथ विस्तार को प्राप्त होता है। इस प्रकार इस संसार में सेवावृत्ति से बढ़कर दूसरा कोई पाप नहीं है॥४७४॥

वह समुद्रदत्त प्रतिदिन कमलश्री के लिये वन से लाकर अच्छे-अच्छे फल,फूल और जमीकन्द देता था तथा उसके आगे अपनी मनोहर संगीत की कला दिखाता था। फल यह हुआ कि समुद्रदत्त ने कुछ समय में कमलश्री को अपने वश में कर लिया।

जैसा कि कहा है-भील, वन में अपने संगति के गुण से वेगशाली हरिणों को भी बाँध लेते हैं यह ठीक ही है क्योंकि गुण किसकी कार्यसिद्धि नहीं करता ? अर्थात् सभी की करता है॥४७५॥ और भी कहा है-

बाला स्त्री, खेलने के समय दिये हुये उत्तम फल और भोजन से प्रसन्न होती है। जवान स्त्री, वस्त्र और आभूषणादि से हर्षित होती है। मध्यम अवस्था वाली प्रौढ़ स्त्री, रति क्रीडा की कुशलता से प्रमुदित होती है। और वृद्धा स्त्री, मधुर भाषण तथा आदर सत्कार से अनुरक्त होती है॥४७६-४७७॥

अधिक क्या कहें ? उस कमलश्री के मन में ऐसा लगने लगा कि वह समुद्रदत्त मेरा पति हो। इस प्रकार विचार करती हुई वह उसमें रात-दिन अनुरक्त रहने लगी।

जैसा कि कहा है—अग्नि, काष्ठों से तृप्त नहीं होती, महासागर नदियों से तृप्त नहीं होता, यमराज प्राणियों से तृप्त नहीं होता और स्त्री पुरुषों से तृप्त नहीं होती॥४७८॥

दिन की अवधि समाप्त होने पर समुद्रदत्त ने एक दिन कमलश्री से कहा कि हे प्रिये ! तुम्हारे प्रसाद से मैं बहुत सुखी हुआ हूँ। अब सेवा की सीमा निकट आ गयी है इसलिये मैं अपने देश को जाना चाहता हूँ। मैंने जो कुछ भला-बुरा कहा हो वह सब तुम्हें सहन करना चाहिये। इस प्रकार समुद्रदत्त के वचन सुन गद्‌गद् वाणी से कमलश्री ने कहा कि हे नाथ ! मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रहूँगी, इसलिये नियम से तुम्हारे साथ आती हूँ। समुद्रदत्त ने कहा कि तुम स्वामी की सुकुमारी पुत्री हो और मैं महादरिद्र पथिक हूँ। मुझ निर्धन के पास तुम्हें सुख कैसे हो सकता है ? जो सुख तुम्हें यहाँ है वह सुख बाहर नहीं हो सकता है। अतएव मेरे साथ तुम्हारा आना अनुचित है॥४७९॥

जैसा कि कहा है—जब गंगा नदी शंकरजी की जटाओं को छोड़कर रत्नाकर- समुद्र के पास चली गयी तब शंकरजी इसमें अपनी दरिद्रता को कारण मान कर कहते हैं कि चर्म ही मेरा वस्त्र है, मृतक का शिर मेरा आभूषण है, भस्म मेरा अङ्गराग है, मेरे पास एक ही बैल है और वह भी हल चलाने में कुशल नहीं है, बस, इतनी ही मेरी सम्पत्ति है। इसलिए मेरे जैसे दरिद्र का अपमान कर गंगा रत्नों की खान स्वरूप जलधि-समुद्र पक्ष में मूर्ख के पास चली गयी है। वास्तव में निर्धन मनुष्य का जीवन बड़ा कष्टपूर्ण है, आश्चर्य है कि स्त्रियाँ भी उसे छोड़ देती हैं।

निर्धन मनुष्य कष्ट आने पर स्त्रियों के द्वारा छोड़ दिया जाता है। कमलश्री ने कहा कि हे स्वामिन् ! बहुत कहने से क्या ? मैं तुम्हारे बिना क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकती। सर्वथा मना करने पर भी मैं यहाँ नहीं रहूँगी। पश्चात् समुद्रदत्त ने कहा-तो आओ। तुमने जो उपार्जित किया है वह होगा। जैसा कि कहा है-

नारियल के फल में रहने वाले पानी के समान होने वाली वस्तु होती ही है और जाने वाली वस्तु हाथी के द्वारा उपभुक्त कैंथा के सार के समान चली ही जाती है॥४८०॥

एक समय उस कमलश्री ने समुद्रदत्त को घोड़ों का भेद दे दिया। कहा कि इन घोड़ों के समूह के बीच जो दो घोड़े अत्यन्त दुर्बल खड़े हैं उनमें एक जलगामी है और दूसरा आकाशगामी। जलगामी लाल रंग का है और आकाशगामी सफेद रंग का। उसके कहने से उन घोड़ों को उसी प्रकार जानकर मन में अत्यन्त संतुष्ट होता हुआ समुद्रदत्त कहता है कि पुण्य के बिना इच्छित पदार्थ प्राप्त नहीं होते।

इसी अवसर पर दूसरे देश से अपना माल बेचकर तथा अपने देश के योग्य वस्तुयें लेकर उसके मित्र आ गये। समुद्रदत्त ने उन सबके लिये भोजनादिक दिया।

जैसा कि कहा है-देता है, लेता है, गुप्त बात कहता है, पूछता है, भोजन करता है और भोजन कराता है यह छह प्रकार का प्रीति का लक्षण है॥४८१॥

मित्रों का मिलना मनुष्यों के लिये परम सुखकारी है। जैसा कि कहा है--

मित्र के आने पर कोई कहता है कि हे मित्र जिसमें आप दिखायी देते हैं वह पहर पापों को हरने वाला है, वह घड़ी सैकड़ों पुण्यों से श्रेष्ठ उत्तम घड़ी है और वह वेला सुख को मिलाने वाली है॥४८२॥

एक समय वह समुद्रदत्त अशोक के पास जाकर कहता है कि हे स्वामिन् ! तीन वर्ष हो गये और हमारे साथी भी दूसरे देश से आ गये हैं इसलिए मेरी सेवा का मूल्य दिया जाये जिससे मैं अपने नगर की ओर चला जाऊँ। अशोक ने कहा कि हे समुद्रदत्त ! देखने वाले इन घोड़ों के बीच जो दो घोड़े तुम्हें रुचे उन्हें ले लो। तदनन्तर घोड़ों की शाला में जाकर उसने जलगामी और आकाशगामी घोड़े लेकर अशोक को दिखाये। उन घोड़ों को देखकर चिन्ता को प्राप्त हुए अशोक ने कहा- अरे समुद्रदत्त ! तू मूर्खों में अगुआ है, कुछ भी नहीं जानता है। ये दोनों घोड़े अत्यन्त दुर्बल और कुरूप हैं आज या प्रातः मर जावेंगे। इसलिए उन घोड़ों को क्यों लेते हो ? दूसरे पुष्ट बहुमूल्य तथा सुन्दर दो घोड़े ले लो। समुद्रदत्त ने कहा कि मुझे इन्हीं से प्रयोजन है अन्य से नहीं। समीप में खड़े हुए लोगों ने कहा कि अहो, यह महामूर्ख तथा दुराग्रही है। इसके लिए हित अहित की बात करना व्यर्थ है। जैसा कि कहा है--

अग्नि, पानी से रोकी जा सकती है, सूर्य का घाम, छत्ते से दूर किया जा सकता है, रोग, औषधियों के संग्रह से हटाया जा सकता है, विष, नाना प्रकार के मंत्रों तथा प्रयोगों से ठीक किया जा सकता है, मदोन्मत्त हाथी तीक्ष्ण अंकुश से वश में किया जा सकता है और बैल तथा गधा, दण्ड के द्वारा ठीक किये जा सकते हैं। इस प्रकार सब की औषध शास्त्र में बतायी गयी है परन्तु मूर्ख की कोई औषधि नहीं है॥४८३॥ और भी कहा है-

किसी मित्र ने किसी को मूर्ख कहा। इसके उत्तर में मित्र, मित्र से कहता है कि हे मित्र ! मूर्खता मुझे भी अच्छी लगती है क्योंकि उसमें आठ गुण हैं- मूर्ख मनुष्य निश्चिन्त रहता है, बहुत भोजन करता है, ढीठ होता है, रात-दिन सोता है, कार्य और अकार्य के विचार में अन्धा तथा बहरा रहता है, मान-अपमान में मध्यस्थ रहता है, इस तरह मूर्ख मनुष्य सब मनुष्यों के शिर पर पैर देकर सुख से जीवित रहता है॥४८४॥

अशोक ने कहा कि यह मन्दभाग्य है। जो मन्दभाग्य होता है उसे अच्छी वस्तु का लाभ नहीं होता। ऐसा कहकर वह अपने घर चला गया। अशोक ने परिवार के

सब लोगों से पूछा कि इस परदेशी को घोड़ों का भेद किसने दिया है ? क्योंकि-

जहाँ अपने लोग नहीं होते वहाँ भेद नहीं होता। देखो, दण्ड से युक्त कुल्हाड़ों के द्वारा वृक्ष काटेजाते हैं॥४८५॥

परिवार के समस्त लोगों ने शपथ लेकर अपना विश्वास दिया परन्तु किसी धूर्त ने अशोक के आगे कमलश्री की सभी चेष्टा कह दी। तब अशोक ने वह सुन अपने मन में विचार किया कि अहो ! यह दुष्टा है। स्त्रियों में गुप्त बात नहीं ठहरती। क्योंकि-

जल में पड़ा हुआ थोड़ा सा तेल, दुर्जन को प्राप्त हुआ छोटा सा गुप्त समाचार, पात्र में दिया हुआ थोड़ा सा दान और बुद्धिमान् मनुष्य को प्राप्त हुआ अल्प शास्त्र वस्तुस्वभाव के कारण स्वयमेव विस्तार को प्राप्त हो जाता है॥४८६॥ दूसरी बात यह है--

स्त्रियाँ कुशील मनुष्यों में घूमती हैं, कुल मर्यादा का उलंघन करती हैं तथा गुरु, मित्र, पति और पुत्र का स्मरण नहीं करती हैं -इन्हें भूल जाती हैं॥४८७॥

जो सुख-दु:ख, जय-पराजय, तथा जीवन-मरण आदि को जानते हैं वे तत्त्वज्ञ मनुष्य भी निश्चय से स्त्रियों की चेष्टा में मोहित हो जाते हैं- वस्तु स्वरूप को भूल जाते हैं॥४८८॥

असत्य, दु:साहस, माया, मूर्खता, अत्यधिक लुब्धता, स्नेह रहितता और निर्दयता ये स्त्रियों के स्वाभाविक दोष हैं॥४८९॥ और भी कहा है-

'स्त्री नदी के समान है' यह जो कहा जाता है वह सत्य है क्योंकि रस-स्नेह पक्ष में जल से शून्य होती हुई वह किनारों के समान दोनों कुलों को नष्ट करती है॥४९०॥

अशोक ने फिर भी विचार किया कि यदि घोड़ा नहीं देता हूँ तो प्रतिज्ञा भंग होती है और महापुरुष को प्रतिज्ञा भंग नहीं करनी चाहिये। जैसा कि कहा है-

दिग्गज, कर्मठ और अत्यन्त स्थिर शेषनाग के द्वारा धारण की हुई भी यह पृथिवी चल जाती है-कम्पित हो उठती है परन्तु निर्मल चित्त वाले मनुष्यों का स्वीकृत कार्य युगान्तकाल में भी नहीं चलता है- विचलित नहीं होता है॥४९१॥

यदि पुत्री के ऊपर क्रोध करता हूँ तो वह सर्व मर्मों को-गुप्त वस्तुओं को जानती है अत: खजाना आदि अन्य सब कुछ भी बता देगी।

जैसा कि कहा है-रसोई बनाने वाले, कवि, वैद्य, चारण, शस्त्र धारक,

स्वामी, धनी, मूर्ख और मर्मज्ञ मनुष्य को कुपित नहीं करना चाहिये ॥४९२॥

इस प्रकार सुन्दर फल का विचार कर अशोक ने समुद्रदत्त को बुलाया और सबके सामने उसे वे दो घोड़े तथा कमलश्री पुत्री दे दी। शुभमुहूर्त में विवाह हो गया। कुछ दिनों के बाद अशोक ने समुद्रदत्त को यथायोग्य बात कही। भार्या सहित समुद्रदत्त, मित्रों के साथ अपने देश की ओर चल पड़ा। इसके पूर्व ही अशोक ने नाविक से संकेत कर दिया था कि हे नाविक ! तुम्हें इस समुद्रदत्त से समुद्र की उतराई के लिए दो घोड़े माँगना चाहिये। धीवर नाविक ने कहा कि असम्भव वस्तु कैसे मिल सकती है ? जैसा कि कहा है-

कंजूस मनुष्य के धन, साँपों से मणि, सिंहों की गर्दन के बाल और कुलीन स्त्रियों के स्तनों को संसार के प्राणी कैसे छू सकते हैं ? अर्थात् नहीं छू सकते हैं ॥४९३॥

अशोक ने कहा कि बहुत कहने से क्या लाभ है ? तुम अवश्य ही घोड़े माँगो। उसने कहा-ऐसा ही होगा। तदनन्तर जामाता के साथ कुछ दूर आकर, अपनी पुत्री को शिक्षा देकर तथा धीवर को कही हुई बात का बार-बार जता कर अशोक लौटकर अपने घर आ गया। समुद्रदत्त मित्रों आदि के साथ समुद्रतट पर आया। वह समुद्र कैसा था ? जिसमें तरंगों का समूह चंचल था, जो फेन के द्वारा चन्द्रमा के समान था तथा प्रलयकाल की क्रीडा से युक्त मेघ, मगरमच्छों के समूह और मूँगाओं से युक्त था, ऐसा था वह समुद्र। नाविक ने जल उतराई के मूल्य द्वारा दो घोड़े माँगे तब कुपित होकर समुद्रदत्त ने कहा कि योग्य उतराई को छोड़कर मैं फूटी कौड़ी भी नहीं दूँगा, घोड़ों की बात ही क्या है ? नाविक ने कहा कि यदि ऐसा है तो मैं आपको समुद्र के उस पार नहीं पहुँचाऊँगा। उसके वचन सुन कानों तक लम्बे नेत्रों वाली कमलश्री ने एकान्त में कहा कि हे नाथ ! चिन्ता क्यों की जा रही है ? जलगामी घोड़े पर सवार होकर और आकाशगामी घोड़े को हाथ से पकड़कर समुद्र को पार कर हम दोनों अपने घर चलेंगे। समुद्रदत्त वैसा ही कर अपने घर चला गया। उसके साथी भी क्रम से घर पहुँच गये। सभी आत्मीयजनों को हर्ष हुआ। कमलश्री के साथ विषय सम्बन्धी सुख का अनुभव करता हुआ समुद्रदत्त सुख से समय व्यतीत करने लगा।

एक समय समुद्रदत्त ने आकाशगामी घोड़ा सुदण्ड राजा के लिये दे दिया। उससे संतुष्ट हुए राजा ने उसके लिए आधा राज्य और अनंगसेना नाम की अपनी पुत्री विवाह ने के लिए दे दी। तदनन्तर समुद्रदत्त सुखी होकर परलोक में सुख का साधन जो दान, पूजा आदि है उन सबको करने लगा। एक दिन सुदण्ड

राजा ने वह घोड़ा रक्षा करने के लिए परममित्र सूरदेव सेठ के हाथ में दे दिया। ठीक ही है क्योंकि उत्तम मनुष्यों की मित्रता आधिपत्यस्वामित्व प्राप्त होने पर भी नहीं जाती है। जैसा कि कहा है-

जिस प्रकार दिन के पूर्वार्ध की छाया प्रारम्भ में बड़ी होती है पश्चात् क्रम से घटती जाती है और अपरार्ध की छाया प्रारम्भ में छोटी होती है पीछे बढ़ती जाती है। उसी प्रकार दुर्जन और सज्जन की मित्रता होती है अर्थात् दुर्जन की मित्रता प्रारम्भ में बड़ी होती है पीछे घटती जाती है और सज्जन की मित्रता प्रारम्भ में छोटी होती है पीछे बढ़ती जाती है॥४९४॥

चिन्तारूपी गुप्त रोग से पीड़ित मनुष्यों के लिए मित्र उत्कृष्ट औषध है क्योंकि उसके लिये युक्त और अयुक्त सभी कुछ कह दिया जाता है॥४९५॥

पाप को दूर करता है, हित के लिये प्रेरित करता है, गुप्त बात को छिपाता है गुणों को प्रकट करता है, आपत्ति में पड़े हुए साथी को नहीं छोड़ता है और समय पर सहायता देता है। सत्पुरुष, समीचीन मित्र के ये लक्षण कहते हैं॥४९६॥

वह सेठ बड़े प्रयत्न से उस घोड़े की रक्षा करता था। एक दिन उस सूरदेव सेठ ने अपने मन में विचार किया कि अहो, यह घोड़ा आकाशगामी है। इसका उपयोग तीर्थयात्रा करके क्यों न किया जाय ?

क्योंकि कहा है-

जब तक यह शरीर रोगों से रहित होकर स्वस्थ है, जब तक वृद्धावस्था दूर है, जब तक पञ्चेन्द्रियों की शक्ति नष्ट नहीं हुई है और जब तक आयु का क्षय नहीं हुआ है तभी तक विद्वान् को आत्म-कल्याण के विषय में बहुत भारी प्रयत्न कर लेना चाहिये क्योंकि भवन के जलने पर कुआँ खुदवाने का उद्यम कैसा ? अर्थात् व्यर्थ है॥४९७॥

तदनन्तर पुचकार कर और तीन बार हाथ से ताड़ित कर वह घोड़े पर सवार हो जाता है। इस प्रकार वह अष्टमी और चतुर्दशी रूप पर्व के दिनों में विजयार्ध पर्वत पर स्थित जिन मन्दिरों के दर्शन करने लगा तथा कैलाशादि पर्वतों के शाश्वत मन्दिरों में भी जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना करता था। इस प्रकार बड़े सुख से उसका समय व्यतीत होता था। क्योंकि--

बुद्धिमान मनुष्यों का काल धर्मशास्त्र के विनोद से व्यतीत होता है और अन्य मनुष्यों का काल निद्रा तथा कलह के द्वारा बीतता है॥४९८॥

वह सूरदेव महान् तत्त्वज्ञानी तथा दृढ़ सम्यत्क्त्व से युक्त था। जैसा कि कहा है-यह निज स्वरूप का ज्ञाता था, तत्त्वज्ञ था, ज्ञानियों में श्रेष्ठ था, जैन साधु के समान समस्त हेय-उपादेय को जानता था, यह दृढ़ बुद्धिमान् किसी के द्वारा भी अन्यथा नहीं किया जा सकता था तथा रागपूर्ण वचन रूपी प्रचण्ड वायु के द्वारा भी पर्वत के समान निश्चित हो निश्चल रहता था॥४९९-५००॥एक दिन पल्ली नगर के राजा जितशत्रु के आगे एकान्त कर किसी ने कहा कि हे राजन् ! कौशाम्बी में सूरदेव सेठ के पास आकाशगामी घोड़ा है। वह सेठ प्रतिदिन उस पर सवार होकर पल्ली नगर के ऊपर आकाश मार्ग से जिनेन्द्रदेव की पूजा के लिये जाता है। जैसा कि कहा है-

राजा का अत्यन्त छोटा कार्य हो तो भी उसे सभा के बीच नहीं कहना चाहिये यह नीतिशास्त्र के कर्ता वृहस्पति ने कहा है॥५०१॥ चारण, बन्दी, नीच, नाई, माली और भिक्षुओं के साथ बुद्धिमान् मनुष्य कोई मन्त्रणा नहीं करे॥५०२॥ इस प्रकार उसके वचन सुन पल्ली नगर का राजा जितशत्रु चुप रह गया। किसी समय आकाश मार्ग में जाते हुए उस घोड़े को देखकर पल्ली नगर के राजा ने अपने मन में कहा कि यह दुर्बल होकर भी उत्तम गुणों को करने वाला है। जैसा कि कहा है- शाण पर कसा हुआ मणि, युद्ध में विजय प्राप्त करने या घायल सैनिक, मद के कारण दुर्बलता को प्राप्त हुआ हाथी, शरद ऋतु में जिनके किनारे सूख गये हैं ऐसी नदियाँ, कला मात्र से शेष रहने वाला चन्द्रमा, संभोग द्वारा मर्दित बाला स्त्री और याचकों को धन देकर निर्धनता को प्राप्त हुए मनुष्य, ये सब कृशपने से शोभित होते हैं॥५०३॥

तदनन्तर राजा जितशत्रु ने सैनिकों के आगे कहा कि जो वीर इस घोड़े को लाकर मुझे सौंपेगा उसे आधा राज्य और अपनी पुत्री दूँगा। जैसा कि कहा है

अत्यन्त मलिन कार्य के करने में दुर्जनों की बुद्धि अत्यन्त निपुण होती है क्योंकि उल्लुओं की दृष्टि अंधकार में रूप को ग्रहण करती है॥५०४॥

जब सब सुभट नीचा मुखकर चुप रह गये तब कुन्तल नाम के सुभट ने कहा कि हे स्वामिन् ! मैं लाता हूँ। ऐसी प्रतिज्ञा कर वह अन्य देश में चला गया। वहाँ उसने सब उपाय देखे परन्तु सेठ के घर में प्रवेश कराने वाला एक भी उपाय उसके हृदय में प्रकट नहीं हुआ इसलिये वह अत्यन्त खिन्न हुआ। कुछ समय में उसने जिनधर्म रूपी उपाय को प्राप्त किया अर्थात् बड़े भारी प्रपञ्च से वह जैनी बन गया। उसने किसी गाँव में स्थित सागरचन्द्र मुनिराज के पास कपट से देववन्दना आदि के शास्त्र पढ़ लिये और एक विशिष्ट श्रावक बन गया। प्रसिद्ध हो गया। कुन्तल ब्रह्मचारी, सचित्त वस्तुओं का त्यागी है, प्रासुक आहार ग्रहण करता है,

नियतकाल पर सामायिक आदि आवश्यकों को करता है और भूमि पर सोता है। इत्यादि विशेषणों से युक्त हुआ वह वेला-तेला आदि तप करता है। तप के प्रभाव से वह लोकपूज्य हो गया। जैसा कि कहा है—तप से राज्य प्राप्त होता है, तप से स्वर्ग की संपदाएँ मिलती हैं, तप से मोक्ष का सुख उपलब्ध हो सकता है और तप तीन लोक के ऐश्वर्य को करने वाला है॥५०५॥

वास्तव में सज्जनों का समागम लोक में महान् गुणकारी है। जैसा कि कहा है-

सज्जन की संगति से नीच मनुष्य भी गौरव को प्राप्त हो जाता है क्योंकि गंगातट पर उत्पन्न हुई धूलि भी मनुष्यों द्वारा वन्दित होती है-पूजी जाती है॥५०६॥

कपटी ब्रह्मचारी कुन्तल, क्रम से चलता हुआ कौशाम्बी नगरी में आ पहुँचा और सूरदेव सेठ के द्वारा बनवाये हुए सहस्त्रकूट चैत्यालय में ठहर गया। वह कपट से नेत्ररोग का बहाना कर पट्टी बाँधे रहता था। पूँछने वाले लोगों से कहा करता था कि मुझे नेत्र की बहुत पीड़ा है इसलिये मैं उपवास करूँगा। जैसा कि कहा है-

नेत्ररोगी, पेट का रोगी, शिर का रोगी, नासूर का रोगी और ज्वर का रोगी-इन पाँच रोगों वाले पुरुषों को लंघन करना उत्कृष्ट औषध है॥५०७॥

एक दिन पूजा के लिये आये हुए सेठ ने पुजारी से पूछा कि हे पुजारी जी ! आज कोई अतिथि आया है क्या ? पुजारी ने कहा कि हे सेठजी ! नेत्र की पीड़ा से पीड़ित महातपस्वी ब्रह्मचारी अतिथि आया है। पुजारी के वचन सुन सेठ शीघ्र ही मन्दिर गया और इच्छाकार कर उससे कहने लगा कि हे धर्मात्मन् ! मुझ पर प्रसन्नता करो, पारणा के लिये घर पर पधारिये, वहाँ आपको नेत्र की औषध भी मिल जायेगी क्योंकि औषध के बिना नेत्र-रोग शान्त नहीं होगा। उस मायाचारी ने कहा कि हे सेठजी ! ब्रह्मचारियों को गृहस्थ के घर में रहना अनुचित है। सेठ ने कहा कि जिसका राग दूर हो गया है उस पुरुष के लिए यह घर और यह वन इसका भेद नहीं है। जैसा कि कहा है-

रागी मनुष्यों को वन में भी दोष उत्पन्न होते हैं और घर में भी पञ्चेन्द्रियों के निग्रह रूप तप किया जाता है। जो उत्तम कार्य में प्रवृत्ति करता है उस राग रहित मनुष्य का घर ही तपोवन है॥५०८॥

इत्यादि कथन के द्वारा समझा कर बड़े कष्ट से ब्रह्मचारी को घर ले आया। किसी धूर्त ने उस मायाचारी को देखकर सेठ के आगे कहा कि हे सेठजी ! यह ब्रह्मचारी नहीं है किन्तु कपटी महाधूर्त है आपके घर को लूटकर जायेगा। यह सुन सेठ ने कहा कि अरे पापी ! जितेन्द्रिय की निन्दा सर्वथा नहीं करना चाहिये।

लोगों के बीच जितेन्द्रिय मनुष्य होता है। निन्दा करने वाला पाप को प्राप्त होता है। कपटी धर्मात्मा बने हुए ब्रह्मचारी ने कहा कि हे सेठजी ! इस पुण्यात्मा के ऊपर क्रोध मत कीजिये। सेठ ने विचार किया कि अहो, यह सत्पुरुष है, निन्दा और स्तुति करने वाले के ऊपर इसे हर्ष विषाद नहीं है। सेठ के पास खड़े लोगों ने कहा कि इस धर्मात्मा को अहंकार है ही नहीं। तब उस मायाचारी ने कहा कि जो सर्वज्ञ होता है वह गर्व नहीं करता फिर अन्य की तो बात ही क्या है ? जैसा कि कहा है।

जब अहंकार से गुणी मनुष्यों के विद्यमान गुण भी नष्ट हो जाते हैं तब गुणों का अभिलाषी मनुष्य गुण नाशक अहंकार को कैसे कर सकता है ? ॥५०९॥ बिच्छू के एक काँटा है उसे ही वह पूँछ के द्वारा अपने शिर पर धारण करता है परन्तु सर्प विष रूप हजारों काँटों को धारण करता हुआ भी गर्व को प्राप्त नहीं होता है॥५१०॥

तदनन्तर सूरदेव सेठ ने उस ब्रह्मचारी को बड़ी भक्ति से अपने घर लाकर भोजन कराया और जहाँ एकान्त में वह आकाशगामी घोड़ा रहता था वहाँ उसे ठहरा दिया। सेठ स्वयं ही प्रतिदिन उस ब्रह्मचारी की अत्यधिक वैयावृत्य-सेवा करता था। वह दम्भी धार्मिक भी प्रतिदिन उपदेश देकर सेठ को संतुष्ट करता था। वह कहा करता था कि हे सेठ जी, तुम धन्य हो जो जिनेन्द्र भगवान् के द्वारा कहे हुए छह कार्यों को करते हो। मुनि भी भिक्षा के लिए तुम्हारे घर आते हैं। श्रावक के छह कर्म ये हैं-

देवपूजा, गुरुपासना, स्वाध्याय, संयम, तप और दान ये गृहस्थों के प्रतिदिन करने योग्य छह कर्म हैं॥५११॥

ऐसा होने पर एक दिन सेठ को निद्रारूपी स्त्री से आलिंगित-सोता हुआ देखकर वह ब्रह्मचारी घोड़े पर सवार हो आकाश मार्ग से चला गया। उस कुन्तल ने घोड़े पर कोड़े का प्रहार किया। कोड़े के प्रहार को न सहन कर घोड़े ने उस कपटी ब्रह्मचारी को नीचे गिरा दिया। नीचे गिरता हुआ कुन्तल विचार करता है कि अहो ! मेरी दुर्बुद्धि हो गयी जिससे अंगभंग और निर्जन स्थान में मरण का अवसर आया। अब क्या करूँ ? वह कुन्तल अंगभंग की पीड़ा, प्यास तथा भूख आदि से मर गया।

वह घोड़ा भी कैलाश पर्वत पर जाकर, मन्दिर की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर तथा जिनेन्द्र भगवान् को नमस्कार कर उनके आगे खड़ा हो गया। उसी समय चिन्तागति और मनोगति नाम के दो चारण ऋद्धिधारी मुनिराज प्रतिमाओं को नमस्कार करने के लिये आये थे। उसी समय बहुत से विद्याधर भी वहाँ आ गये। देव वन्दना कर जिनेन्द्र देव के आगे खड़े हुए घोड़े को देखकर किसी विद्याधर राजा ने पूछा कि हे मुनिराज ! यह घोड़ा कौन है ? और किस लिए जिनेन्द्र भगवान्

के आगे खड़ा है। तदनन्तर मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर घोड़े का प्रारंभ से लेकर अन्त तक का सब वृत्तान्त कह दिया। मुनिराज ने पश्चात् यह भी कहा कि हे विद्याधर नरपते ! घोड़े के कारण सूरदेव के ऊपर बड़ा उपसर्ग आ पड़ा है इसलिए पुचकार कर तथा तीन बार हाथ से ताड़ित कर घोड़े पर सवार हो जाओ और धर्म की रक्षा करने के लिए शीघ्र ही सेठ के पास जाओ। जैसा कि कहा है-

भृष्टकुल का, जीर्णशीर्ण कुआँ, तालाब और बाबड़ी का, राज्यभ्रष्ट शरणागत राजा का, गाय का, ब्राह्मण का तथा जीर्ण मन्दिर का जो उद्धार करता है उसे चौगुना पुण्य होता है॥५१२॥

यह वचन सुन विद्याधर राजा घोड़े पर सवार हो आकाशमार्ग से जब तक कौशाम्बी नगरी में आता है तब तक क्या हुआ ? निद्रारूपी स्त्री का परित्याग कर-जाग कर जब सेठ उठता है तब उसने घोड़ा नहीं देखा। काम करने वाले सेवकों से उसने कहा कि हे कर्मचारियो ! घोड़ा कहाँ है ? उन्होंने कहा कि हम नहीं जानते हैं। पश्चात् सब जगह देखने पर भी जब घोड़ा नहीं दिखा तब चिन्ता हुई। सेठ ने कहा कि अहो ! दुष्टो के प्रपञ्च को कोई नहीं जानता है। जैसा कि कहा है-

दुर्जनों के चरित्र को न देवों का गुरु-वृहस्पति जानता है, न असुरों का शत्रु जानता है, न रूद्र जानता है, न ब्रह्मा जानता है। वास्तव में दुर्जनों की चेष्टा में दुर्जन ही निपुण होते हैं क्योंकि साँप की चाल को साँप ही जानते हैं॥५१३॥ और भी कहा है—

जो अपना स्वार्थ छोड़कर दूसरे का अर्थ सिद्ध करते हैं, वे सत्पुरुष तो एक ही हैं- सबसे महान् हैं। जो अपने प्रयोजन का विरोध कर दूसरों का प्रयोजन सिद्ध करने के लिये दूसरों के हित को नष्ट करते हैं वे मनुष्य राक्षस हैं और जो निरर्थक ही दूसरे के हित को नष्ट करते हैं वे कौन हैं ? यह हम नहीं जानते॥५१४॥

तदनन्तर अपने मन में विचार किया कि अहो, आज मेरा अशुभ कर्म आया है। घोड़े के कारण राजा अवश्य ही शिरच्छेद करेगा। जो सुख अथवा दुःख होगा वह मुझे भोगने के योग्य है। ऐसा विचार कर तथा अपने कुटुम्ब को बुलाकर कहा कि मेरा जो होनहार है वह हो तथापि आप लोगों को दान पूजा आदि का त्याग नहीं करना चाहिये। जैसा कि कहा है-

नीच मनुष्य, विघ्नों के भय से कार्य का प्रारम्भ ही नहीं करते हैं, मध्यम मनुष्य कार्य का प्रारम्भ तो करते हैं परन्तु विघ्नों से पीड़ित हो विरत हो जाते हैं, परन्तु उत्तम मनुष्य विघ्नों के द्वारा बार-बार पीड़ित होने पर भी प्रारम्भ किये हुए कार्य को नहीं छोड़ते हैं ॥५१५॥

किसी ने हँसी में सेठ से कहा कि हे सेठजी ! तुम्हारे गुरु ने अच्छा किया न ? सेठ ने कहा कि हे मूर्ख ! वह मायाचारी था परन्तु एक के अपराध से क्या दर्शन की हानि होती है ? क्योंकि जिनशासन निर्मल है और इस लोक तथा परलोक में सुख देने वाला है। वह मायाचारी अपने पाप से मरण को प्राप्त होगा।

असमर्थ मनुष्य के अपराध से क्या धर्म मलिन होता है ? अर्थात् नहीं होता क्योंकि मेढ़क के मर जाने से क्या समुद्र दुर्गन्ध को प्राप्त होता है? अर्थात् नहीं ॥५१६॥ और भी कहा है—

चुगलखोर मनुष्य के मायापूर्ण वचनों से उत्तम मनुष्य कहीं भी दोष युक्त नहीं होते क्योंकि सर्पो के विष के प्रसंग से बड़े बड़े तालाब अपेय अवस्था को प्राप्त नहीं होते ॥५१७॥

और भी कहा है-

इस समय कलिकाल चल रहा है, क्योंकि सत्य मनुष्य दुर्लभ है, देश टैक्सों के भार से नष्ट हो गये हैं, राजा लोभ को प्राप्त हो चुके हैं, अनेक चोरों के दल पृथिवी को लूट रहे हैं, आर्य मनुष्य ह्रास को प्राप्त हो रहे हैं, सज्जन दु:खी हो रहे हैं और दुर्जन प्रभावयुक्त हो रहे हैं, ठीक है प्राय: कर कलिकाल प्रविष्ट हो चुका है॥५१८॥

तदनन्तर सेठ शीघ्र ही जिन मन्दिर गया और देव वंदना कर कहने लगा कि हे परमेश्वर ! जब मेरा यह उपसर्ग टल जायेगा तब अन्न-पान में प्रवृत्ति होगी अन्यथा नहीं। ऐसा उच्चारण कर वह देव के आगे सल्लेखना का नियम लेकर खड़ा हो गया।

तत्पश्चात् घोड़े का सब वृत्तान्त सुनकर क्रोध को प्राप्त हुए राजा ने कहा कि हे सुभटो ! सूरदेव का शिर काटने के सिवाय और कुछ नहीं करना है तथा उसका सब घर लूट लिया जाय। राजा के पास स्थित लोगों ने भी ऐसा ही कहा सो ठीक है क्योंकिजैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है।

तदनन्तर यमदण्ड कोतवाल को बुलाकर राजा ने कहा कि हमारे शत्रु सूरदेव का शिर काट कर शीघ्र मेरे पास लाओ। जैसा कि कहा है-

धर्म को प्रारम्भ करने में, ऋण चुकाने में, कन्यादान में, धन कमाने में, शत्रु के घात में, अग्नि बुझाने में तथा रोग दूर करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये॥५१९॥

तदनन्तर राजा की आज्ञा पाकर तथा सूरदेव के पास आकर ज्योंही यमदण्ड उपसर्ग करता है त्योंही शासन देवता ने उसे कील दिया। पश्चात् यह समाचार जानकर राजा ने सेनापति को भेजा परन्तु शासन देवता के द्वारा वह भी

यमदण्ड के समान कील दिया गया। पश्चात् राजा स्वयं आया परन्तु एक राजा को छोडकर सब कील दिये गये जिससे चित्र लिखित के समान रह गये। नगर के बीच सबको आश्चर्य हुआ।

इसी के बीच वह विद्याधर घोड़े पर बैठकर जिन मन्दिर आ पहुँचा और मन्दिर की तीन प्रदक्षिणाएँ देकर जिनेन्द्र भगवान् को विधिपूर्वक नमस्कार कर और घोड़े को आगे पकड़ कर खड़ा हो गया। पश्चात् देवता ने पञ्चाश्चर्य किये तथा राजा के आगे कहा कि यदि धर्म के निधान स्वरूप सेठ की शरण में जाओगे तो तुम्हारी सेना का छुटकारा होगा अन्यथा नहीं।

देवता का कथन सुनकर राजा ने कहा कि अहो ! अर्थ, अनर्थ का कारण होता ही है। अर्थ किसका अनर्थ नहीं करता है ? समस्त धन के लोभ में रत हुए भरत ने छोटे भाई-बाहुबली का घात करने में मन लगाया।

ऐसा कहकर तथा शीघ्र ही जिन मंदिर के बीच आकर हस्त-कमल जोड़ राजा कहता है- हे सेठजी ! क्षमा करो, अज्ञान से जो कुछ भी मैंने किया है वह तुम्हारे द्वारा क्षमा करने के योग्य है। मेरे ऊपर कृपा करो। तदनन्तर सेठ ने कायोत्सर्ग पूरा किया। विद्याधर के द्वारा लाया हुआ घोड़ा सौंपा गया तथा विद्याधर नरेश को सम्मान के साथ विदा किया। इस प्रसंग में किसी ने कहा- सेठजी ! तुम तो चले ही गये थे परन्तु दैव ने रक्षा कर ली। सेठ ने कहा- वह वैसा ही ठीक था परन्तु काल को पाकर कौन क्षय को प्राप्त नहीं हुआ है ? जैसा कि कहा है-

त्रिकूटाचल जिसका दुर्ग था, समुद्र जिसकी परिखा थी, कुबेर जिसका धन रक्षक था और संजीवनी विद्या जिसके मुख में थी वह रावण भी काल के वश में मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥५२०॥

तदनन्तर सेठ सब मनुष्यों के द्वारा पूजित और प्रशंसित हुआ। राजा ने कहा- जिन धर्म को छोड़कर अन्य धर्म में अतिशय नहीं दिखाई देता। तदनन्तर अपने-अपने पुत्रों को अपने-अपने पदों पर स्थापित कर राजा सुदण्ड, मन्त्री सुमति, राजश्रेष्ठी सूरदेव, वृषभसेन तथा अन्य बहुत लोगों ने जिनदत्त भट्टारक के समीप दीक्षा ले ली। कोई श्रावक हुए और कोई भद्र परिणामी हुए। रानी विजया, मन्त्री की स्त्री गुणश्री, सूरदेव की स्त्री गुणवती तथा अन्य बहुत सी स्त्रियों ने अनन्तमति आर्यिका के समीप दीक्षा ले ली। कोई श्राविकाएँ हुई। विद्युल्लता ने कहा कि हे स्वामिन् ! यह सब प्रत्यक्ष देखकर मेरी बुद्धि धर्म में दृढ़ हुई है और मुझे दृढ़ सम्यक्त्व हुआ है। यह सुन अर्हद्दास ने विद्युल्लता की प्रशंसा कर कहा- हे

प्रिये ! तुम्हारे सम्यक्त्व की मैं भक्तिपूर्वक श्रद्धा करता हूँ, भक्ति से इच्छ करता हूँ और उसकी रुचि करता हूँ। अन्य स्त्रियों ने भी विद्युल्लता की प्रशंसा की। कुन्दलता से सेठ ने कहा कि हे कुन्दलते ! तुम भी निश्चलचित्त होती हुई देव-पूजा आदि करो। तदनन्तर कुन्दलता ने कहा कि यह सब अस.य है।

आपने और आपकी सात स्त्रियों ने जिस सम्यग्दर्शन को ग्रहण किया है उसकी मैं न श्रद्धा करती हूँ, न इच्छा करती हूँ और न रुचि करती हूँ।

कुन्दलता के वचन सुन राजा, मन्त्री और चोर ने अपने मन में विचार किया कि अहो ! विद्युल्लता ने जिसे प्रत्यक्ष देखा है उसे यह पापिनी कुन्दलता असत्य है' ऐसा बतलाती है। प्रात:काल इसका निग्रह करेंगे। चोर ने अपने मन में फिर भी विचार किया कि यह दुर्जन का स्वभाव है। जैसा कि कहा है-

जगत् का अपकार और उपकार करने में दुर्जन और सुजन तृप्ति को प्राप्त नहीं होते क्योंकि अन्धकार जगत् को ग्रसता है और सूर्य सदा प्रकाशित करता है॥५२१॥

तदनन्तर प्रभात को प्रकट हुआ देखकर मन्त्री ने राजा के आगे कहा कि हे स्वामिन् ! घर चला जाय, रात्रि व्यतीत हो चुकी। अब इसके आगे यहाँ ठहरना योग्य नहीं है। पश्चात् राजा और मंत्री अपने घर चले गये। चोर भी अपने स्थान पर चला गया। सेठ भी परिकर के साथ प्रात:काल की क्रिया तथा आरती कर अपने घर आ गया। पश्चात् सूर्योदय हुआ। जैसा कि कहा है-

तीक्ष्ण किरणों के धारक तथा कमल-वन के बन्धु, सूर्योदय को प्राप्त हुए उस मण्डल की मैं वन्दना करता हूँ जिसकी कान्ति तोते की चोंच के समान लाल है तथा जो पूर्व दिशा के कुण्डल के समान जान पड़ता है॥५२२॥

तदनन्तर देवपूजा आदि प्रात:काल सम्बन्धी कार्य कर कुछ लोगों के साथ राजा और मन्त्री, अर्हद्दास सेठ के घर आये। सेठ ने उनका बहुत भारी आदर किया। रत्नों से भरा हुआ सुवर्णथाल भेंट किया तथा हाथ जोड़ मस्तक से लगाकर नम्रीभूत सेठ ने कहा कि हे स्वामिन् ! आज मेरे घर में कल्पवृक्ष आदि पदार्थ अवतीर्ण हुए हैं। शुभलक्ष्मी के द्वारा मैं देखा गया हूँ आज मेरे पूर्वज आये हैं और मेरा घर पवित्र हुआ है।

कहा है—अत्यन्त प्रसन्न मुख से युक्त राजा की दृष्टियाँ जहाँ-जहाँ पड़ती हैं वहाँ-वहाँ पवित्रता, कुलीनता, दक्षता और सुन्दरता पहुँचती है॥५२३॥

प्रसन्न करके कार्य आदिक प्रकाशित किया जाय। राजा ने कहा सेठजी ! अतिथि के आने पर आसनादि का देना गृहस्थों के लिये उचित है। जैसा कि कहा है-

आइये आइये, आसन पर बैठिये, आपके दर्शन से मुझे प्रसन्नता है, क्या समाचार है ? दुर्बल क्यों हो रहे हो ? और बहुत समय बाद दिख रहे हो ..... इस प्रकार घर पर आये हुए स्नेही जनों से जो आदरपूर्वक संभाषण करते हैं उनके घर निश्चल चित्त से अवश्य ही जाना चाहये॥५२४॥

घर पर आये हुए शत्रु के लिये भी स्नेह पूर्ण दृष्टि, प्रेमपूर्ण वचन, आसन और शक्ति के अनुसार भोजन तथा पान देना चाहिये॥५२५॥

तदनन्तर राजा ने कहा कि हे सेठजी ! आज रात्रि में तुम्हारे तथा तुम्हारी स्त्रियों के द्वारा कही गयी कथाएँ जिस दुष्टा स्त्री के द्वारा निन्दित की गयी हैं, वह दुष्टा पापिनी तथा अनर्थ करने वाली आगे चलकर तुम्हारी मृत्यु का कारण होगी, इसलिए उसे मेरे आगे दिखलाओ जिससे मैं उसे दण्डित करूँ।

दुष्टा स्त्री, मूर्ख मित्र, उत्तर देने वाला सेवक और सर्प सहित घर में निवास करना मृत्यु ही है इसमें संशय नहीं है॥५२६॥

राजा के यह वचन सुन सेठ विचार करने लगा कि क्या राजा रात्रि में स्वयं ही आया था या किसी दुर्जन ने मेरा वृत्तान्त कहा है, अब क्या करूँ ? आज विषम अवसर आया है, यदि असत्य कहता हूँ तो राजदण्ड है अन्यथा उस कुन्दलता का अनर्थ होने वाला है। जब तक सेठ इन विकल्पों में तत्पर था तब तक कुन्दलता ने स्वयं ही आकर कह दिया कि हे राजन् ! वह दुष्टा स्त्री मैं हूँ। आपने धर्म का फल सुना है तथा जिन मार्ग और व्रत का अतिशय देखा है। इन सब लोगों ने जो कहा था और इन सब का जिन धर्म सम्बन्धी व्रत पर जो निश्चय है उसकी न मैं श्रद्धा करती हूँ, न इच्छा करती हूँ और न रुचि करती हूँ।

राजा ने कहा- किस कारण से श्रद्धा नहीं करती हो ? हम सभी ने रौप्यखुर चोर को शूली पर चढ़ाया देखा है उसे तुम असत्य कैसे कहती हो ? उसने निर्भीक होकर कहा कि हे राजन् ! ये सब जैन की संतान हैं, जिन मार्ग को छोड़कर अन्य मार्ग को नहीं जानते हैं, परन्तु मैं जैन नहीं हूँ और न जैन की पुत्री हूँ मैंने यद्यपि पहले कभी सम्यक् प्रकार से जैन धर्म को नहीं सुना है तथापि प्रातःकाल पारणा के बाद अवश्य ही जिनदीक्षा लूँगी ऐसी मैंने प्रतिज्ञा की है। इन लोगों ने यद्यपि जिनमार्ग के व्रत का माहात्म्य देखा है, सुना है और अनुभव किया है तथापि ये अज्ञानी उपवास आदि के द्वारा शरीर का शोषण करते हैं। संसार और भोगों की लम्पटता को कुछ भी नहीं छोड़ते हैं।

जैसा कि कहा है-

मूर्ख मनुष्य तपों के द्वारा अपने शरीर को कृश करते हैं परन्तु ज्ञानी जीव, शरीर के विकार का कारणभूत जो मन है उसे कृश करते हैं अथवा मन और शरीर के विकार के कारण को कृश करते हैं। ठीक ही है क्योंकि कुत्ता फेंके हुए पत्थर के ढेले को क्रोधवश ग्रसता है और सिंह फेंकने वाले को नष्ट करता है॥५२७॥

गुणों में यत्न करना चाहिये, व्यर्थ के आडम्बरों से क्या प्रयोजन है ? क्योंकि दूध से रहित गायें घण्टाओं के द्वारा नहीं बिकती हैं॥५२८॥

विभूति चञ्चल है, यौवन क्षणभंगुर है और जीवन यमराज के दाँतों के बीच विद्यमान है तो भी परलोक की साधना में अवज्ञा-उपेक्षा की जा रही है। अहो, मनुष्यों की यह चेष्टा आश्चर्य उत्पन्न करने वाली है॥५२९॥

अनेक विघ्नों से परिपूर्ण एक कार्य जब तक सिद्ध नहीं हो पाता है तब तक दूसरा बड़ा कार्य उपस्थित हो जाता है और वह जब तक सिद्ध नहीं हो पाता तब तक अन्य बड़ा कार्य सामने खड़ा हो जाता है। इस प्रकार कार्यों की परम्परा से जिसकी धर्म क्रियायें लुप्त हो गयी हैं ऐसा यह व्यापार में मूढ़ हुआ जगत् मृत्यु के हाथ से चोटी पकड़ लेता है अर्थात् बीच में ही मर जाता है॥५३०॥

यौवन वृद्धावस्था से ग्रस्त है, शरीर रोगों से पीड़ित है तथा मृत्यु प्राणों की इच्छा कर रही है मात्र एक तृष्णा ही उपद्रव रहित है॥५३१॥

अनेक लोगों के साथ वैर कराने वाले मानवीय धन को धिक्कार हो, सब ओर से चिन्तनीय राज्य को धिक्कार हो, अपने अंग को धिक्कार हो, पुनरागमन-बार-बार जन्म धारण करने की प्रवृत्ति को धिक्कार हो और अनेक रोगों के निवासस्थल शरीर को धिक्कार हो॥५३२॥

जो समस्त अपवित्र पदार्थों का घर है और विशेष रूप से कृतघ्न है ऐसे शरीर के लिये अज्ञानी जन पाप करते हैं यह बड़े खेद की बात है॥५३३॥

हे राजन् ! यदि ये लोग व्रत ग्रहण करते हैं तो इनका यह सब कहना सत्य होता है अन्यथा वचन जाल के द्वारा कहा हुआ यह सब असत्य है। कुन्दलता के वचन सुन राजा आदि ने उसकी अनेक प्रकार से स्तुति, पूजा, प्रशंसा और वन्दना की।

तदनन्तर सेठ ने कहा कि हे राजन् ! मेरे चित्त में पहले से ही दीक्षा लेने का भाव था। इस कुन्दलता को छोड़ अन्य स्त्रियों के तथा इस समय हुए इस कुन्दलता के कथन से अत्यन्त दृढ़ हो गया है। आशा है आपके प्रसाद से सिद्धि को प्राप्त होगा। राजा ने सेठ की भी प्रशसा की। पश्चात् सेठ ने बहुत भारी आग्रह से समस्त साथियों सहित राजा को भोजन के लिये बैठाया। अर्हद्दास सेठ ने भोजन की उत्तम

सामग्री बनवाकर परिजन सहित राजा को भोजन करवाया। मुनियों के लिये अतिथिसंविभाग किया-उन्हें आहारदान दिया। जिन पूजा आदि की विधि को समाप्त किया। परिवार के लोगों की चिन्ता की पश्चात् स्वयं पारणा किया। राजा हर्षित होकर तथा उसके पुण्य कार्य की प्रशंसा कर अपने घर गया।

तदनन्तर राजा, मन्त्री, चोर, अर्हद्दास सेठ तथा अन्य बहुत लोगों ने अपने-अपने पुत्र को अपने-अपने पद पर स्थापित कर श्रीगुणधर मुनिराज के समीप तप के लिये दीक्षा ले ली। कितने ही श्रावक हुए और कितने ही भद्रपरिणामी हुए।

रानी, मन्त्री की स्त्री, अर्हद्दास सेठ की स्त्री तथा अन्य अनेक स्त्रियों ने उदयश्री आर्यिका के समीप तपोदीक्षा ले ली। कई स्त्रियाँ श्राविकाएँ बनीं।

तदनन्तर अर्हद्दास मुनि, निरतिचार तथा पाप के प्रचार को नष्ट करने वाले मुनिधर्म की आराधना कर विधिपूर्वक समाधि को प्राप्त हुए और मोक्ष सुख के पात्र हुए। अन्य लोग भी तीव्र तप कर कई स्वर्ग गये और कई सर्वार्थसिद्धि को गये।

इस प्रकार यह कथा गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक से कही। इसे सुनकर सब लोगों का सम्यग्दर्शन अत्यन्त दृढ़ हुआ।

इस सम्यक्त्वकौमुदी की कथा को सुनकर हे भव्यजीवो ! अत्यन्त दृढ़ सम्यक्त्व धारण करो जिससे संसार भ्रमण का छेद हो। जैसा कि कहा है-

धर्म से ऊपर को गमन होता है अर्थात् स्वर्ग प्राप्त होता है, अधर्म से नीचे गमन होता है अर्थात् नरक प्राप्त होता है, ज्ञान से मोक्ष प्राप्त होता है और अज्ञान से बन्ध होता है।

यह धर्म धन के प्रेमियों को धन देने वाला है, काम के इच्छुक मनुष्य को काम देने वाला है, सौभाग्य के अभिलाषी मनुष्यों को सौभाग्य देने वाला है, पुत्र की चाह रखने वालों को पुत्र देने वाला है और अन्य क्या कहें, राज्य के अभ्यर्थी मनुष्यों को राज्य देने वाला है अथवा नाना विकल्पों से क्या प्रयोजन है ? यह धर्म मनुष्यों के लिए क्या-क्या नहीं देता है ? किन्तु स्वर्ग और मोक्ष तक को देता है॥५३५॥

धर्म, पुरुषों के लिए कल्पवृक्ष है, धर्म उत्कृष्ट चिन्तामणि है और धर्म, मनोरथों को पूर्ण करने वाली कामधेनु है, इसलिये धर्म करना चाहिये॥५३६॥

जो दु:ख से दमन करने योग्य तथा बहुत ऊँचे कर्मरूप पर्वत को विदीर्ण करने में दुर्निवार वज्र है, संसार रूपी दुस्तर समुद्र को पार करने में जो सर्व साधारण के उपयोग में आने वाला जहाज है, और जो समस्त प्राणियों की रक्षा करने के लिये आदर युक्त पिता के समान है, ऐसा यह सर्वज्ञ कथित धर्म आप सब की तथा हमारी सदा रक्षा करे॥५३७॥

जो संसाररूपी समुद्र का पुल है, कर्मरूपी सघन वन को भस्म करने के लिये प्रचण्ड अग्नि है, मिथ्याभावों को नष्ट करने वाला है, अन्धकार से परिपूर्ण दुर्गति के द्वार को अच्छी तरह बन्द करने वाला है तथा पराभव को प्राप्त विपत्तिग्रस्त जीवों को अवलम्बन देने वाला है ऐसा धर्म रूपी निश्छल बन्धु जिनके पास है उनके लिए बन्धु आदि इन बहुत से व्यर्थ के आलम्बनों से क्या प्रयोजन है॥५३८॥

जो कल्याणरूपी लता का कन्द है, समस्त सुख रूपी फल को प्राप्त कराने में कल्पवृक्ष है, दरिद्रतारूपी प्रचण्ड दावानल को बुझाने के लिये मेघ है, रोगों को नष्ट करने के लिये प्रमुख अद्वितीय वैद्य है।

मोक्षलक्ष्मी को वश में करने वाला मन्त्री है, पापों को नष्ट करने वाला है और संसाररूपी भयंकर समुद्र को पार करने के लिये जहाज के समान हैं, ऐसा यह जिनराज कथित धर्म इस लोक में सेवन करने योग्य है॥५३९॥

जो सैकड़ों कष्टों को प्राप्त हो रहे हैं, क्लेशदायक रोगों से दुःखी हैं, मृत्यु के भय से पीड़ित हैं, दुःख और शोक से पीड़ित हैं, व्याकुल हैं और शरण रहित हैं, ऐसे अनेक जीवों के लिये एक धर्म ही निरन्तर शरणभूत है॥५४०॥

लोक की रक्षा करने वाले श्री अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु परमेष्ठी के पुनीत पद-मुगल में श्रद्धा, भक्ति से युक्त हो बार-बार प्रणाम करता हूँ, ख्याति, पूजा, यश लाभ की कामना से रहित होकर, स्व-पर के कल्याण की भावना से सहित होकर उत्तम बोधि व समाधि को प्राप्त करने हेतु लेखनी को यहाँ विराम देता हूँ। सम्पादन कार्य में हुई त्रुटियों के लिए क्षमा याचना कर, क्षमा भाव धारण करता हूँ।

(समाप्तोऽयं ग्रन्थ)

❑❑❑